चेतना डायरी
CHETNA
ठंडी कॉफी का गरम स्वाद
ई-रिक्शा का सफर
दरवाजे के उस पार
फोन से निकली दीदी
असामाजिक तत्वों से छुड़ाया पीछा
संघर्षों से बनी पहचान
मैडम हम पढ़े-लिखे नहीं हैं
नौकरी नहीं, कमिटमेंट चाहिए
हिसाब की किताब
पुलिस अंकल को बता दूंगी सच
आंकड़ों के पीछे छुपे संघर्ष
कच्ची कलम से बढ़ते कदम
अगर कुछ गड़बड़ हो गया तो?
रिश्तों से बनता है रास्ता
सड़क से संस्था तक-अकाउंट्स एडमिन का सफर
बंद घर की खुली खिड़की
राज बहादुर को मिली नई राह
विश्वास का बीज
मिले सुर मेरा तुम्हारा
जहां ज़रूरत, वहां परशुराम
असल मूल्यांकन
लड़के नहीं रोते
काम भी, परिवार भी
मैंने जिया चेतना का सफर
भोली देवी की कहानी
विश्वास की नींव
दो दोस्त, एक सपना
जब डर बना सीख
सपनों की यात्रा
सर्दी की वह भयानक शाम
बारिश से बचाए बिल्स
तू मुझे कोई दूसरा काम लगा दे, कचरा नहीं बीनना
मेरी उड़ान – संघर्ष से सपनों तक

चेतना डायरी
प्रथम संस्करण – 8 मार्च 2026

परिकल्पना एवं संपादनः
संजय गुप्ता, निदेशक – चेतना संस्था

संपादकीय सहयोगः
अनुजा विरमानी

लेखकगणः
पूजा, उषा, दीपेश, प्रगति, भावना, मीनाक्षी, राधा, सृष्टि, चुनचुन, अग्रिमा, पवन, नीलम, अनुश्री, ऋषभ, रज्जाक, सिमरन, राजबहादुर, राजेंद्र, मनीषा, परशुराम, समरीन, डॉली, मोनिका, प्रज्ञा, निशा, इंदु, शानू, ममता, रजनी, आसमा, अभिषेक, सचिन, ज्योति

कवर पेज डिजाइनः
प्रज्ञा चौधरी

मुद्रक एवं प्रिंटरः
लतीफ किर्मानी

निदेशक का संदेश

चेतना डायरी: सामाजिक कार्य की यात्रा का दस्तावेज

1992 में जब मैंने पंतनगर विश्वविद्यालय से कृषि अभियंत्रिकी में अपनी शिक्षा पूरी की, उसी समय सामाजिक कार्य का एक गहरा नशा मन में चढ़ चुका था। इसका मुख्य कारण बना राष्ट्रीय सेवा योजना के अंतगर्त चेतना स्टूडेंट विंग की शुरुआत, जिसने मेरे भीतर समाज के लिए कुछ करने की एक स्थायी चेतना जगा दी। वहीं से सामाजिक कार्यों में मेरी रुचि गहराती चली गई।

कार्य की वास्तविक शुरुआत घोड़ाडोंगरी, जिला बैतूल की एक संस्था के साथ वॉटरशेड परियोजना से हुई। उस क्षेत्र में काम के लिए अक्सर ट्रेन से यात्रा करनी पड़ती थी। रास्ते में मिलने वाला कोई भी व्यक्ति जब पूछता– "आप क्या काम करते हैं?" तो जब मैं अपने कार्य के बारे में बताने की कोशिश करता, तो वह उनकी समझ से परे होता।

कोई कहता – "शायद आप सेल्स का काम करते होंगे",

कोई पूछता – "क्या ये कंस्ट्रक्शन से जुड़ा काम है?"

सामाजिक कार्य –और वह भी एक प्रोफेशनल तरीके से – उस समय यह बात लोगों की सोच से बहुत आगे की बात थी।

वो दिन थे, और आज के दिन हैं। आज 34 वर्ष आगे आ जाने के बाद भी स्थिति बहुत अलग नहीं है।

आज भी रिश्तेदार, परिचित, आसपास के लोग यही सवाल पूछते हैं

–"आखिर ये सामाजिक संस्थाएँ करती क्या हैं?" "इस क्षेत्र में काम क्या होता है?"

चेतना संस्था की औपचारिक शुरुआत 8 मार्च 2002 में हुई। तब से लेकर आज तक इस यात्रा में कई साथी जुड़े, कई विदा हुए – टीम बदली, परिस्थितियाँ बदलीं, चुनौतियाँ बदलीं – लेकिन उद्देश्य नहीं बदला।

इसी क्रम में मन में एक विचार आया – क्यों न लोगों की इस जिज्ञासा को शांत करने के लिए 'चेतना डायरी' लिखी जाए।

एक ऐसी डायरी – जहाँ चेतना से जुड़े कार्यकर्ता अपने जीवन के अनुभव लिखें, संस्था के कार्यों की वास्तविकता साझा करें, आने वाली कठिनाइयों को शब्द दें, मिलने वाले सुख को महसूस कराएँ, संघर्षों से मिलने वाले आत्मबल को पहचानें, और अपने अनुभवों पर अपनी संवेदनशील टिप्पणियाँ दर्ज करें।

मेरे जीवन में भी ऐसे अनेक अनुभव रहे हैं, लेकिन 3 जनवरी 2020 को जब मुझे राष्ट्रपति सचिवालय से आमंत्रण मिला – कि राष्ट्रपति जी आपसे भेंट करना चाहते हैं –वह मेरे जीवन का एक सर्वोच्च क्षण था। जब आपके द्वारा किए जा रहे कार्यों को राष्ट्रीय स्तर पर पहचान मिलती है, तो वह केवल सम्मान नहीं होता –वह एक संकल्प बन जाता है।

आज "चेतना डायरी" के माध्यम से 33 अनुभव, किस्से, कहानियाँ प्रकाशित की जा रही हैं –जो आपको सामाजिक क्षेत्र की गहराइयों, संघर्षों, चुनौतियों, संवेदनाओं, और सेवा के वास्तविक स्वरूप से परिचित कराएँगी। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इन्हें पढ़कर पाठकों में सामाजिक कार्य की समझ विकसित होगी, संवेदनशीलता जन्म लेगी, और समाज के लिए कुछ करने की प्रेरणा उत्पन्न होगी – ताकि यह यात्रा केवल पढ़ी न जाए, बल्कि जीवन में उतारी जाए।

– **संजय गुप्ता**

ठंडी कॉफी का गरम स्वाद

पूजा सिंह,
कार्यक्रम प्रमुख

जब शहर पूरी तरह जागा भी नहीं होता, तब मैं अपना लैपटॉप खोलकर काम में लग जाती हूँ। कभी कॉफी ठंडी हो जाती है, तो कभी किसी प्रस्ताव (प्रोपोसल) का तीसरा ड्राफ्ट सेव हो रहा होता है। इसी बीच कहीं एक बच्चा अपनी कॉपी में पहला अक्षर लिख रहा होता है। वही छोटा–सा अक्षर मुझे हर दिन फिर से मेहनत करने की ताकत देता है।

हमारी दुनिया ऐसी है जहाँ दिल और दिमाग दोनों साथ चलते हैं। एक तरफ भावनाएँ हैं, दूसरी तरफ एक्सेल शीट और प्लानिंग। हर प्रस्ताव सिर्फ एक फाइल नहीं होता, बल्कि किसी के बेहतर भविष्य की उम्मीद होता है। फंड जुटाना और प्रस्ताव मंजूर करवाना आसान नहीं होता, लेकिन बच्चों के जीवन में सार्थक बदलाव आगे बढ़ने की हिम्मत देता है।

डोनर्स के साथ काम करते समय दिन और रात का फर्क कभी–कभी खत्म हो जाता है। देर रात की कॉल, अचानक बदलाव, लंबी रिपोर्ट, अतिरिक्त दस्तावेज–यह सब काम का हिस्सा है। उस समय यह नहीं देखा जाता कि यह निजी समय है या दफ्तर का समय। जरूरी यह होता है कि काम सही और समय पर पूरा हो। क्योंकि भरोसा सिर्फ बातों से नहीं, बल्कि समय पर काम करने से बनता है।

CHETNA में प्रोजेक्ट हेड के रूप में काम करना मेरे लिए सिर्फ नौकरी नहीं, बल्कि सीखने और समाज में बदलाव लाने का एक सफर है। एक साथ कई प्रस्तावों पर काम करना पड़ता है, और हर डोनर की अपनी अलग उम्मीदें होती हैं। कोई शिक्षा पर ध्यान देता है, कोई रोजगार पर। किसी को परिणाम के आंकड़े चाहिए, तो किसी को लंबे समय की योजना।

प्रस्ताव बनाना सरल नहीं होता। इसमें इलाके की समस्याओं को समझना, लोगों की असली जरूरत जानना, सही डेटा इकट्ठा करना, काम

की सटीक योजना बनाना, नतीजे तय करना और संतुलित बजट तैयार करना शामिल होता है। कई बार समय इतना कम होता है कि दिन–रात एक जैसे लगने लगते हैं।

इस दौरान डोनर्स से लगातार बात करना बहुत जरूरी होता है –प्रेजेंटेशन देना, कॉन्सेप्ट समझाना, बजट बताना, बार–बार बदलाव करना। यह सब हमें सिखाता है कि सामाजिक काम सिर्फ भावना से नहीं चलता, इसके लिए साफ सोच, सही रणनीति, जवाबदेही और पारदर्शिता भी जरूरी है।

हर प्रस्ताव कुछ न कुछ सिखा जाता है। अगर मंजूर हो जाए तो खुशी और आत्मविश्वास मिलता है। अगर न हो तो और बेहतर बनने की सीख मिलती है। इस सफर ने मुझे भी बदला है– आत्मविश्वास बढ़ा, फैसले लेने की ताकत आई, बातचीत और नेतृत्व कौशल बेहतर हुआ। सबसे बड़ी बात, इस काम ने मुझे "मैं" से "हम" तक पहुंचाया।

हमारी असली ताकत टीमवर्क है। कोई भी प्रस्ताव अकेले तैयार नहीं होता। निदेशक के कुशल नेतृत्व, बोर्ड मेंबर के मार्गदर्शन, फील्ड टीम की जमीनी समझ, प्रोग्राम टीम की योजना, फाइनेंस टीम का हिसाब और नेतृत्व का सहयोग –सब मिलकर एक मजबूत प्रस्ताव बनाते हैं। देर रात तक साथ बैठकर काम करना, एक–दूसरे की मदद करना – यही हमारी ताकत है।

और फिर वह दिन आता है जब ईमेल आता है कि प्रस्ताव मंजूर हो गया है। वह सिर्फ एक ईमेल नहीं होता, बल्कि हमारी मेहनत की पहचान होती है। जब वही योजना जमीन पर काम बनकर दिखती है, जब समुदाय में बदलाव दिखता है, जब बच्चे आत्मविश्वास से आगे बढ़ते हैं – तब हर मेहनत सफल लगती है।

चेतना में हम सिर्फ प्रोजेक्ट नहीं बनाते, हम उम्मीद बनाते हैं। कागज से हकीकत तक का यह सफर मुश्किल जरूर है, लेकिन यही सफर हमें बेहतर इंसान और बेहतर टीम बनाता है। ऐसे में काम के दबाव में हर ठंडी हो चुकी कॉफी का स्वाद गरम महसूस होता है।

ई-रिक्शा का सफर

सृष्टि,
नन्हे परिंदे, नोएडा

यह उस समय की बात है जब मैं अपनी एक फील्ड विजिट पर जा रही थी। यात्रा साधारण थी, परंतु उसका अनुभव असाधारण बन गया। मैं एक ई–रिक्शा में बैठी अपने कार्यस्थल की ओर बढ़ रही थी। रास्ते भर मेरे मोबाइल की घंटियाँ थमने का नाम नहीं ले रही थीं। कभी एक कॉल समाप्त करती, तो तुरंत दूसरी आ जाती। कभी हिंदी में, कभी अंग्रेजी में और कभी बिल्कुल सहज देसी लहजे में मैं अपने दायित्वों को निभाने में व्यस्त थी।

मेरे सामने बैठे एक शिक्षित और सजग व्यक्तित्व ने सरल स्वर में पूछा,

"आप कहाँ कार्य करती हैं?"

मैंने भी विनम्रता से उत्तर दिया, "मैं एक एनजीओ में कार्य करती हूँ।"

इतना सुनते ही उन्होंने उत्सुकता से पूछा, "क्या वह चेतना नाम की संस्था है? मैंने उसके बारे में सुना है। हमारे परिचित बता रहे थे कि वह नोएडा में बहुत अच्छा कार्य कर रही है।"

मैंने मुस्कुराकर कहा, "जी, क्या आज भी आप उनके कार्यों के बारे में जानते हैं?"

उन्होंने सहमति जताई, पर साथ ही एक संदेह भी प्रकट किया,

"क्या चेतना किसी राजनैतिक दल से जुड़ी है? आजकल कई संस्थाएँ चल रही हैं, विश्वास करना थोड़ा कठिन हो जाता है।"

मैंने शांत भाव से कहा, "हो सकता है, आजकल ऐसी बातें सुनने को मिलती रहती हो पर हमारी संस्था जात–पात, धर्म और राजनीति से कोसों दूर है।"

इसी बीच मेरी यात्रा का वह पड़ाव आ गया जहाँ मुझे उतरना था। तेज धूप और गर्मी को देखते हुए मैंने रिक्शा चालक से विनम्र निवेदन किया,

"क्या आप मुझे बच्चों वाली बस तक छोड़ देंगे?"

उन्होंने सहर्ष हामी भर दी। जब मैं उतरने लगी, तो वही सज्जन पुनः

बोले, "क्षमा कीजिएगा, मैं इसी बस और उसी संस्था की बात कर रहा था।"

मैंने हल्की खुशी के साथ कहा, "जी, हमारा कार्य पूर्णतः सामाजिक सरोकारों और पारदर्शिता पर आधारित है।"

उनकी उत्सुकता और बढ़ गई। उन्होंने जानना चाहा कि यह सब कैसे संचालित होता है। मैंने विनम्रता से कहा, "यदि आपके पास कभी समय हो तो अवश्य आइए, मैं विस्तार से सारी जानकारी दूँगी। अभी मुझे दैनिक कार्यों की तैयारी करनी है।"

वह सज्जन तो चले गए, पर उनकी बातें मेरे मन में घूमती रही कि कैसे एक साधारण व्यक्ति संस्था के काम को देखता है और उनके बारे में सोचता है।

वास्तव में, किसी भी संस्था की सफलता बाहर से जितनी सरल दिखाई देती है, भीतर से उतनी ही कठिन परिश्रम, अनुशासन और विश्वास की नींव पर टिकी होती है। संस्था की गरिमा और विश्वसनीयता बनाए रखने के लिए कई रातें जागकर बितानी पड़ती हैं। कभी दोपहर का भोजन छूट जाता है, तो कभी मन में यह चिंता बनी रहती है कि कहीं किसी को हमारे किसी कार्य से ठेस न पहुँच जाए।

उस दिन की वह साधारण–सी यात्रा मुझे यह सिखा गई कि समाज में प्रश्न उठते रहेंगे, संदेह भी होंगे, परंतु यदि हमारे कार्य ईमानदार हैं तो हर प्रश्न का उत्तर हमारे कार्य स्वयं दे देते हैं। और शायद यही हमारी सबसे बड़ी उपलब्धि है।

दरवाजे के उस पार

दीपेश कुमार सैन,
ट्विंकलिंग स्टार्स, जयपुर

सरकारी दफ्तर का दरवाजा अक्सर थोड़ा भारी लगता है। केवल लकड़ी और लोहे के कारण नहीं, बल्कि उन धारणाओं के कारण जो हम अपने मन में लेकर वहाँ पहुँचते हैं। जैसे उस चौखट के भीतर प्रवेश करने से पहले ही हमें अपने शब्दों, अपने आत्मविश्वास और अपने साहस को परखना पड़ता हो। पहली बार जब मुझे एक सरकारी अधिकारी से मिलने जाना था, तो हाथ में फाइल थी, लेकिन मन में संकोच। रास्ता साफ था, पर आत्मविश्वास धुंधला। मन में कई सवाल उठ रहे थे। पता नहीं वे सुनेंगे भी या नहीं। समय देंगे या औपचारिकता निभाकर आगे बढ़ा देंगे। हमारी बात उनके लिए मायने रखेगी भी या नहीं। सच तो यह है कि डर दफ्तर का कम और हमारी बनी हुई धारणाओं का अधिक होता है।

वेटिंग हॉल में बैठा मैं लोगों को देख रहा था। कोई फाइल लेकर आ रहा था, कोई लौट रहा था। कुछ चेहरों पर उम्मीद थी, कुछ पर थकान। उस क्षण लगा कि शायद व्यवस्था ऐसी ही होती है, थोड़ी जटिल, थोड़ी धीमी और थोड़ी दूर सी। हम अक्सर मान लेते हैं कि सरकारी तंत्र एक अलग दुनिया है, जहाँ संवेदनाएँ कम और प्रक्रियाएँ ज्यादा होती हैं।

लेकिन जब मैं उनके कक्ष में पहुँचा, तो तस्वीर कुछ अलग थी। वहाँ एक व्यक्ति बैठा था, केवल कुर्सी पर नहीं बल्कि जिम्मेदारी पर। टेबल पर फाइलों का ढेर था, पर आँखों में केवल औपचारिकता नहीं, बल्कि चिंता भी थी। चिंता इस बात की कि सीमित संसाधनों में अधिकतम कैसे किया जाए। बातचीत शुरू हुई तो समझ आया कि उनकी चुनौतियाँ भी हमारी ही तरह हैं। फर्क बस इतना है कि उनके पास अधिकार हैं, पर सीमाएँ भी उतनी ही स्पष्ट हैं, और हमारे पास उत्साह है, पर पहुँच सीमित।

तभी महसूस हुआ कि दरवाजा वास्तव में बंद नहीं था, हम ही झिझक

रहे थे।

बातचीत जब समान लक्ष्य पर आई, जैसे समुदाय के वंचित बच्चों के अधिकार, उनकी सुरक्षा, शिक्षा और न्याय की बात, तब पद और परिचय पीछे छूट गए। वहाँ केवल संवेदनाएँ थीं और एक साझा जिम्मेदारी। उस क्षण यह स्पष्ट हो गया कि हम अलग–अलग पक्षों में नहीं, बल्कि एक ही उद्देश्य की दिशा में खड़े हैं।

उसी समय समझ में आया कि नेटवर्किंग केवल संपर्क बनाना नहीं है, बल्कि संवेदना बनाना है। यह केवल बैठक नहीं, विश्वास की शुरुआत है।

उस शाम मेरे संस्था निदेशक ने सहजता से पूछा कि बैठक कैसी रही। मैंने संकोच में कहा कि ठीक रही। वे मुस्कुराए और बोले, अगली बार साथ चलते हैं। सचमुच जब वे मेरे साथ उसी दफ्तर के दरवाजे तक पहुँचे, तो वह दरवाजा पहले से हल्का लगा। निदेशक ने बेहद सहज तरीके से अब तक बात करी और उन्हें बताया कि कैसे संस्था का कार्य उनके विभाग से मिलता है। उस दिन समझ आया कि मार्गदर्शन केवल सलाह देना नहीं, बल्कि साथ लेकर चलना भी है।

जब आप अकेले जाते हैं तो लगता है कि आप एक निवेदन लेकर गए हैं, लेकिन जब आप टीम और नेतृत्व के साथ जाते हैं तो लगता है कि आप एक दृष्टिकोण लेकर गए हैं। धीरे–धीरे वही अधिकारी, जो कभी औपचारिक और दूर से लगते थे, सहयोगी बन गए। संवाद बढ़ा, सुझाव आने लगे और नए रास्ते खुलने लगे। तब समझ आया कि सीमाएँ सबके साथ होती हैं, लेकिन जब लक्ष्य समान हो तो दायरा अपने आप बढ़ जाता है।

लायजनिंग केवल संबंध बनाना नहीं, बल्कि भरोसा बुनना है। नेटवर्किंग शक्ति का खेल नहीं, बल्कि उद्देश्य का संगम है। आज भी जब किसी नए दफ्तर का दरवाजा देखता हूँ तो हल्की सी झिझक होती है, लेकिन उसके साथ एक विश्वास भी जुड़ा रहता है। अब समझ आया है कि दरवाजे अक्सर बंद नहीं होते, हमें बस साहस के साथ दस्तक देनी होती है।

फोन से निकली दीदी

प्रगति श्रीवास्तव,
स्ट्रीट टू स्ट्रेंथ

जयपुर की एक खूबसूरत याद—

जयपुर की यह यात्रा मेरे लिए सिर्फ एक सामान्य यात्रा नहीं थी, बल्कि यह बच्चों के सपनों, उनकी मासूमियत और उनके अधिकारों से जुड़ने का एक बहुत ही गहरा और भावनात्मक अनुभव था।

कुछ समय पहले, मैंने बच्चों के अधिकारों को ध्यान में रखते हुए कुछ गाने लिखे और रिकॉर्ड किए थे। इन गानों का उद्देश्य केवल संगीत देना नहीं था, बल्कि उनके अधिकारों को एक सरल और सुंदर तरीके से उन्हें समझाना था। जब ये गाने बच्चों तक पहुँचे, तो वे उनके पसंदीदा गाने बन गए। वे उन्हें यूट्यूब पर सुनते, देखते और मुस्कुराते थे। उस समय, उनके लिए मैं बस एक आवाज थी — एक चेहरा, जो फोन की स्क्रीन के अंदर दिखाई देती थी ।

लेकिन जब मैं जयपुर के उस स्थान पर पहुँची और बच्चों से मिली, तब वह पल मेरे जीवन के सबसे खास पलों में से एक बन गया।

मैंने धीरे—धीरे उन गानों को गाना शुरू किया, जिसे उन्होंने फोन पर सुना था। जैसे ही मेरी आवाज उनके कानों तक पहुँची, वे अचानक मेरी ओर देखने लगे। उनके चेहरों पर आश्चर्य साफ झलक रहा था। उनकी आँखों में सवाल भी थे और खुशी भी।

एक बच्चे ने मासूमियत से पूछा,

"मैम, आप तो फोन में थीं, आप बाहर कैसे आ गईं?"

दूसरे बच्चे ने मुस्कुराते हुए कहा,

"मैडम, आप बहुत खूबसूरत गाती हो। मैं आपका फैन हूँ।"

उनकी ये बातें सुनकर मेरा दिल भावनाओं से भर गया। उस पल मुझे एहसास हुआ कि मैं सिर्फ एक सिंगर नहीं थी, बल्कि एक ऐसी आवाज थी

जो उनके दिल तक पहुँच रही थी –एक ऐसी आवाज, जो उन्हें उनके अधिकारों से जोड़ रही थी और उन्हें उनकी अहमियत का एहसास करा रही थी।

जब मैंने उनके साथ उनके अधिकारों से जुड़े गाने गाए और गीतों के माध्यम से उन्हें समझाया, तो उनके लिए उन बातों को समझना बहुत आसान हो गया, जो एक सामान्य प्रक्रिया में केवल बातचीत से समझी नहीं जा सकती थी। जो बातें शब्दों में समझाना मुश्किल होता है, वही बातें संगीत के जरिए उनके दिल में उतर गईं।

कुछ देर बाद, बच्चों ने बहुत ही सादगी से कहा, "मैम, अब हमें अपने अधिकार समझ में आ रहे हैं। गाने के जरिए सीखना बहुत आसान और अच्छा लग रहा है।" उनकी यह बात सुनकर मेरे दिल में एक अलग ही खुशी हुई। यह खुशी किसी भी पहचान, किसी भी मंच या किसी भी प्रसिद्धि से कहीं ज्यादा बड़ी थी। उसी पल मुझे अंदर से एक नई प्रेरणा मिली। मुझे खुद–ब–खुद महसूस हुआ कि मुझे ऐसे ही और भी गाने लिखने होंगे। ऐसे गाने, जिनमें बच्चों की बातें हों, उनकी भावनाएँ हों, उनके सपने हों। मुझे उनकी आवाज बनकर, उनके दिल की बातों को अपने गीतों के जरिए दुनिया के हर बच्चे तक पहुँचाना है।

उस दिन मुझे एक बहुत गहरी बात समझ आई। शायद चेतना के ये गीत दुनिया में कितने लोकप्रिय होंगे या नहीं, शायद हमारा सपना पूरा होगा या नहीं– यह सब अब उतना महत्वपूर्ण नहीं था। क्योंकि उन बच्चों ने हमें पहले ही एक स्टार बना दिया था।

उनकी आँखों में जो सम्मान था, उनकी आवाज में जो अपनापन था, और उनके दिल में जो जगह मुझे मिली थी– वही मेरे लिए सबसे बड़ी उपलब्धि थी। उनकी भावनाओं ने ही चेतना के गानों को सच में "हिट" बना दिया था। जब मैं वहाँ से वापस लौट रही थी, तब मेरे दिल में एक सुकून था और एक नया संकल्प भी। मैं जयपुर से सिर्फ यादें लेकर नहीं लौटी थी, मैं एक नई जिम्मेदारी लेकर लौटी थी। अब मेरा संगीत सिर्फ मेरा नहीं था, अब उसमें बच्चों के सपने थे।

और उसी दिन से, मैंने तय किया – मैं गाऊँगी, बच्चों से लिखवाऊंगी, लिखूँगी, और तब तक लिखती रहूँगी, जब तक हर बच्चे को उसके अधिकार न समझ आ जाए।

असामाजिक तत्वों से छुड़ाया पीछा

भावना,
खिलती कलियां, गुरुग्राम

जब मैं पहली बार जे.एम.डी. सेंटर से जुड़ी, तो मेरे मन में थोड़ी झिझक और उत्सुकता दोनों थीं। यह मेरे लिए एक नई जगह थी, नए बच्चे थे और एक नई जिम्मेदारी भी। लेकिन जैसे ही मैंने बच्चों के साथ समय बिताना शुरू किया, मेरी सारी झिझक दूर हो गई। बच्चे बहुत सरल, उत्साही और सीखने के लिए उत्सुक थे। मैं नियमित रूप से उन्हें पढ़ाती थी, उनसे बातचीत करती थी और उनकी छोटी–छोटी प्रगति देखकर मुझे बहुत खुशी होती थी। धीरे–धीरे सेंटर मेरे लिए सिर्फ कार्यस्थल नहीं, बल्कि एक परिवार जैसा बन गया।

कुछ समय तक सब कुछ बहुत अच्छा चलता रहा, लेकिन धीरे–धीरे मैंने एक बात पर ध्यान दिया। सेंटर के आसपास कुछ लोग रोजाना आकर बैठने लगे थे। वे बार–बार सेंटर की ओर देखते और ताक–झांक करते रहते थे। कई बार वे सिगरेट पीते, ताश खेलते और आपस में ऊँची आवाज में गाली–गलौज करते थे। उनका यह व्यवहार मुझे बहुत असहज कर देता था। मुझे चिंता होने लगी कि कहीं इसका बच्चों पर गलत प्रभाव न पड़े। बच्चे मासूम होते हैं और वे जो देखते–सुनते हैं, उसका असर उनके मन पर पड़ता है।

उन लोगों की मौजूदगी से सेंटर का वातावरण प्रभावित होने लगा। कभी–कभी बच्चे भी उनका शोर सुनकर पढ़ाई से भटक जाते थे। मुझे यह महसूस हुआ कि यदि समय रहते इस स्थिति को नहीं संभाला गया, तो यह बच्चों की सुरक्षा और उनके मानसिक वातावरण के लिए ठीक नहीं होगा। मैं कुछ दिनों तक यह सोचकर चुप रही कि शायद वे लोग स्वयं ही आना बंद कर देंगे, लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

आखिरकार मैंने साहस जुटाकर इस विषय में वहां के मुखिया से बात

करने का निर्णय लिया। मैंने पूरी स्थिति उन्हें विस्तार से समझाई—कैसे वे लोग बाहर बैठते हैं, सिगरेट पीते हैं, गाली—गलौज करते हैं और बार—बार सेंटर की ओर देखते हैं। उन्होंने मेरी बात बहुत गंभीरता से सुनी और मेरी चिंता को समझा। उन्होंने मुझे आश्वासन दिया कि इस समस्या का समाधान अवश्य किया जाएगा।

कुछ ही समय में उन्होंने आवश्यक कदम उठाए। उन सभी लोगों को वहाँ से हटवा दिया गया और स्पष्ट रूप से मना कर दिया गया कि वे सेंटर के बाहर बैठकर इस प्रकार की गतिविधियाँ न करें। उनके इस त्वरित और सकारात्मक सहयोग से मुझे बहुत राहत मिली।

अब सेंटर का वातावरण पहले की तुलना में कहीं अधिक शांत, सुरक्षित और सकारात्मक हो गया है। बच्चे बिना किसी डर या व्यवधान के अपनी पढ़ाई पर ध्यान दे पा रहे हैं। मैं भी निश्चिंत होकर अपना कार्य कर पा रही हूँ। इस अनुभव ने मुझे यह सिखाया कि यदि हम किसी समस्या को पहचानते हैं, तो उसे नजरअंदाज करने के बजाय उचित व्यक्ति से साझा करना चाहिए। सही समय पर उठाया गया कदम न केवल वातावरण को बेहतर बनाता है, बल्कि बच्चों के भविष्य को भी सुरक्षित करता है।

संघर्षों से बनी पहचान

मीनाक्षी,
नन्हे परिंदे, लखनऊ

कभी–कभी जिंदगी हमें ऐसे मोड़ पर लाकर खड़ा कर देती है, जहाँ रुकना भी आसान नहीं होता और आगे बढ़ना भी।

मेरे लिए यह सफर 2017 में शुरू हुआ, जब मैंने चेतना संस्था जॉइन की। उस समय गुरुकुल प्रोजेक्ट चल रहा था, ERC सेंटर और कॉन्टैक्ट पॉइंट्स के साथ। शुरुआत से ही यह सिर्फ़ एक काम नहीं था, यह कुछ बनाने का सफर था, ईंट से ईंट जोड़ने जैसा। हर दिन कुछ नया सीखना, हर छोटी उपलब्धि में खुशी ढूँढना, यही हमारी पहचान बन गई थी।

लेकिन 2023 में जब यह प्रोजेक्ट बंद हुआ, तो ऐसा लगा जैसे अचानक सब कुछ थम गया हो। जिस चीज़ को हमने इतने सालों तक अपने हाथों से बनाया था, उसे यूँ खत्म होते देखना आसान नहीं था।

उस समय चेतना के निदेशक ने हमें कई अवसर दिए, यहाँ तक कि संस्था के बाहर भी आगे बढ़ने के रास्ते दिखाए।

लेकिन दिल ने एक ही बात कही–

'जहाँ से सीखा है, वहीं रहकर आगे बढ़ना है।'

हमने फैसला किया कि हम यहीं रहेंगे, उनके साथ काम करेंगे और लखनऊ में ही अपनी पहचान बनाएंगे।

फिर एक लंबा इंतज़ार आया, लगभग एक साल का।

बिना किसी प्रोजेक्ट के, लेकिन उम्मीद छोड़े बिना।

सर से बातचीत होती रही और हर बार एक भरोसा मिलता रहा कि कुछ अच्छा जरूर आने वाला है।

और फिर जून 2024, एक नई शुरुआत हुई।

हमने दोबारा चेतना जॉइन की और नन्हे परिंदे प्रोजेक्ट की नींव रखी।

शुरुआत छोटी थी, चुनौतियाँ बड़ी थीं, लेकिन इरादे साफ थे।

यह प्रोजेक्ट सिर्फ़ एक पहल नहीं, बल्कि एक जिम्मेदारी है, जो लखनऊ पुलिस कमिश्नरेट के साथ मिलकर चल रही है।

धीरे–धीरे यह प्रोजेक्ट लखनऊ शहर में अपनी एक अलग पहचान बनाने लगा, तीन वैन के साथ, सैकड़ों बच्चों की मुस्कान के साथ।

और अब इस सफर में एक और खुशी जुड़ने जा रही है, हमारे साथ 2 नई वैन और जुड़ने वाली हैं, जिससे इनकी संख्या बढ़कर 5 हो जाएगी।

यह सिर्फ़ संख्या का बढ़ना नहीं है, बल्कि हमारे काम के विस्तार और बच्चों तक पहुँचने के बढ़ते दायरे का संकेत है।

जब मैंने इस प्रोजेक्ट के तहत अपनी जिम्मेदारियाँ संभालीं, तब मुझे नहीं पता था कि यह सफर मुझे अंदर से इतना बदल देगा।

प्रोग्राम्स और ट्रेनिंग को समन्वित करना, सुनने में जितना आसान लगता है, उतना होता नहीं है।

लोगों से मिलना, समय लेना, फाइलें तैयार करना, बार–बार फॉलोअप करना।

हर बार मन में वही सवाल होता था, क्या आज बात बन पाएगी?

शुरुआत में बहुत घबराहट होती थी।

कई बार घंटों इंतज़ार करना पड़ता था, कई बार काम दोबारा करना पड़ता था, और कुछ जगहों पर बात पूरी होने से पहले ही रोक दी जाती थी।

उन पलों में मन टूटने लगता था। खुद से पूछती थी, क्या मैं यह सब कर पाऊँगी?

लेकिन हर बार खुद को संभालती, गहरी साँस लेती और फिर से कोशिश करती।

बच्चों की विजिट, यह काम दिल से जुड़ा था, लेकिन आसान बिल्कुल नहीं।

हर बच्चे की सुरक्षा, माता–पिता की सहमति, गाड़ी, समय और भीड़, सब कुछ एक साथ संभालना पड़ता था।

डिस्ट्रीब्यूशन के दिनों में कभी सामान देर से पहुँचता, कभी भीड़ बहुत ज्यादा हो जाती।

कई बार आँखें भर आती थीं, मन घबरा जाता था।

लेकिन जैसे ही बच्चों की आँखों में उम्मीद देखती, खुद को फिर से मज़बूत कर लेती थी।

इन्हीं संघर्षों के बीच एक दिन ऐसा भी आया, जिसने मेरे पूरे सफर को एक नई पहचान दी।

वह दिन था हमारी एक महत्वपूर्ण ट्रेनिंग का, जहाँ मैं अपने निदेशक सर के साथ मौजूद थी।

उसी दौरान, DCP Traffic सर ने मेरे निदेशक सर से कहा,

'सर, आपकी ये लड़की बहुत हिम्मतवाली है'

उस एक वाक्य ने जैसे मेरे अंदर की सारी थकान मिटा दी।

जिन पलों में मैंने खुद पर शक किया था, उन सबका जवाब मुझे उसी एक पल में मिल गया।

वह सिर्फ़ एक तारीफ नहीं थी,

वह मेरे संघर्ष की पहचान थी, मेरे साहस की सराहना थी।

मैडम हम पढ़े लिखे नहीं हैं

राधा,
स्ट्रीट टू स्किल, दिल्ली

चेतना मे पढ़ने वाले बच्चे अलग–अलग परिस्थितियों से आते हैं। कोई झुग्गी बस्ती से, कोई मजदूर परिवार से, तो कोई ऐसे घर से जहाँ रोजी–रोटी की चिंता ही सबसे बड़ी प्राथमिकता है। ऐसे में पढ़ाई अक्सर पीछे रह जाती है।

हर महीने की तरह इस बार भी पेरेंट्स मीटिंग रखी गई। कमरा साधारण था, वातावरण में हल्की झिझक और उम्मीद दोनों थीं।

मीटिंग की शुरुआत बच्चों की प्रगति रिपोर्ट से हुई। मैंने समझाया कि बच्चे केवल पढ़ाई से नहीं, बल्कि प्यार, संवाद और प्रोत्साहन से भी आगे बढ़ते हैं।

इसी बीच आलिया नाम की बच्ची (परिवर्तित नाम) की चर्चा हुई। आलिया बहुत शांत रहती थी। अक्सर उसका होमवर्क अधूरा होता और वह कक्षा में कम बोलती थी।

उसकी माँ भी मीटिंग में आई हुई थीं। वे घरों में काम करती हैं और सुबह से शाम तक व्यस्त रहती हैं। उन्होंने झिझकते हुए कहा, "मैडम, हम पढ़े–लिखे नहीं हैं, इसलिए समझ नहीं पाते कि बच्चे की मदद कैसे करें।"

मैंने उनका समझाया कि, "आपको पढ़ा–लिखा होना जरूरी नहीं है। बस रोज 15 मिनट बच्ची से बात कीजिए, उससे पूछिए कि आज उसने क्या सीखा। उसकी कॉपी देखिए, उसे महसूस हो कि उसकी माँ उसके साथ है।"

मीटिंग में अन्य अभिभावकों ने भी अपने अनुभव साझा किए। किसी ने कहा कि बच्चा मोबाइल ज्यादा चलाता है, किसी ने बताया कि बच्चा जल्दी गुस्सा हो जाता है। सभी ने मिलकर समाधान खोजे।

बच्चों के लिए पढ़ाई का निश्चित समय, मोबाइल का सीमित

उपयोग, डाँटने के बजाय समझाना, रोज थोड़ी देर बच्चों से खुलकर बातचीत– इस प्रकार मीटिंग खत्म हुई, लेकिन उस दिन कुछ बदल गया था – वह थी सोच।

अगले महीने जब फिर पेरेंट्स मीटिंग हुई, तो वातावरण अलग था। आलिया अब पहले से ज्यादा आत्मविश्वासी दिख रही थी। वह कक्षा में हाथ उठाकर जवाब देती थी और उसका होमवर्क भी पूरा रहता था।

उसकी मां ने मुस्कुराते हुए कहा, "मैं रोज उससे बैठती हूँ, भले मुझे पढ़ना न आता हो। बस उससे बात करती हूँ। अब वो खुद पढ़ने बैठ जाती है।"

सिर्फ आलिया ही नहीं, कई बच्चों में बदलाव दिखा। उनकी उपस्थिति बढ़ी, अनुशासन बेहतर हुआ और सबसे बड़ी बात –उनके चेहरों पर आत्मविश्वास दिखाई देने लगा।

उस दिन मुझे महसूस हुआ कि पेरेंट्स मीटिंग केवल औपचारिकता नहीं, बल्कि एक ऐसा पुल है जो घर और संस्था को जोड़ता है। जब दोनों मिलकर कदम बढ़ाते हैं, तो बच्चों का भविष्य मजबूत होता है।

नौकरी नहीं कमिटमेंट चाहिए

उषा जस्टा,
एचआर

किसी संस्था या एनजीओ में Human Resource प्रबन्धक (HR) सिर्फ एक पद नहीं होता – वह पूरी संसथा की मानव संसाधन व्यवस्था की रीढ़ होता है।

HR का काम सिर्फ भर्ती करना नहीं होता, बल्कि संस्था के उद्देश्य, मूल्यों और जमीनी सच्चाई के अनुरूप सही लोगों को जोड़ना होता है।

ऐसे लोग चुनना जो सिर्फ नौकरी नहीं, बल्कि एक उद्देश्य के साथ सामाजिक काम करने का साहस रखते हों।

संस्था की शुरुआत से लेकर आज तक, लोगों का चयन, टीम का निर्माण, सिस्टम की संरचना, कार्य संस्कृति का विकास –यह सब HR की भूमिका का हिस्सा होता है।

यह सफर सिर्फ फाइलों, ईमेल्स और इंटरव्यू शेड्यूल तक सीमित नहीं होता–यह सफर लोगों से जुड़ा होता है, उनके सपनों से, उनके डर से, उनके टूटने से और उनके बदलने से।

पहला दिन, पहला विज्ञापन, पहला रिज्यूमे, पहला इंटरव्यू –

ये सिर्फ प्रक्रियाएँ नहीं थीं, ये संस्था की नींव रखने के कदम थे।

धीरे–धीरे सैकड़ों लोग आए, गए, चुने गए, छूट गए।

हर चेहरा, हर नाम, हर कहानी, संस्था के सफर का हिस्सा बनती गई।

जब भी किसी पद के लिए विज्ञापन निकलता है, तो ढेरों रिज्यूमे आते हैं–कोई शानदार अंग्रेजी में लिखा हुआ, कोई भारी–भरकम डिग्रियों से भरा, कोई बड़े–बड़े संस्थानों के नामों से सजा हुआ।

कागज पर सब कुछ बहुत सुंदर लगता है। लेकिन सच्चाई कागज पर नहीं, जमीन पर होती है।

इंटरव्यू के समय जब यह स्पष्ट किया जाता है कि काम सड़क से जुड़े बच्चों के साथ है, कम्युनिटी में जाना होगा, फील्ड में उतरकर काम करना होगा, और यह कोई पारंपरिक "ऑफिस जॉब" नहीं है– तो सामने बैठे कई

चेहरों का रंग बदल जाता है। कुछ लोग चुप हो जाते हैं। कुछ नजरें चुरा लेते हैं। कुछ तो साफ कह देते हैं– "यह काम हमारे लिए नहीं है।" कुछ लोग "हाँ" कहते हैं, जॉइन करते हैं और कुछ समय बाद वह महसूस करते हैं कि "हमसे ये काम नहीं हो पा रहा।"

यह असफलता नहीं होती– यह जीवन के लक्ष्य और संस्था के उद्देश्य के बीच का अंतर होता है।

क्योंकि एनजीओ में नौकरी नहीं, कमिटमेंट चाहिए। डिग्री नहीं, संवेदना चाहिए। सीवी नहीं, चरित्र चाहिए।

एक अच्छा टीम सोना ढूंढने की तरह होता है– बहुत मिट्टी छाननी पड़ती है, तभी कहीं जाकर एक छोटा सा सोने का कण मिलता है।

और जब कोई सही व्यक्ति मिलता है, तो उसे सिर्फ नियुक्त नहीं किया जाता– उसे संस्था की संस्कृति से जोड़ा जाता है, मूल्यों से परिचित कराया जाता है, टीम के साथ समायोजित किया जाता है, और लंबे समय तक संस्था में टिके रहने की प्रक्रिया में ढाला जाता है।

कई बार चयन के बाद लोग जॉइन नहीं करते। कई बार कुछ महीनों में ही रास्ते अलग हो जाते हैं। और फिर वही प्रक्रिया दोबारा शुरू होती है– विज्ञापन, रिज्यूमे, शॉर्टलिस्टिंग, इंटरव्यू, चयन। फिर उम्मीद। फिर प्रतीक्षा।

लोग सोचते हैं HR सिर्फ भर्ती करता है। लेकिन सच यह है– HR संस्था की सोच को संरक्षित करता है, टीम की क्षमता वृद्धि करता है, टीम की स्थिरता बनाए रखता है, और संस्था की आत्मा को सुरक्षित रखता है। जनवरी 2025 से दिसंबर 2025 तक कुल 633 इंटरव्यू लिए गए। हर चेहरा एक कहानी। हर बातचीत एक संभावना। और उनमें से सिर्फ 26 लोग ऐसे थे जो सच में उस रास्ते पर चलने के लिए तैयार थे– जो कागज से नहीं, जमीन से जुड़े थे। ये सिर्फ आँकड़े नहीं हैं। ये संस्था की छानबीन की प्रक्रिया है। ये गुणवत्ता की प्रतिबद्धता है। ये यह तय करने की जिम्मेदारी है कि संस्था किस हाथों में आगे बढ़ेगी।

HR होना सिर्फ नौकरी देना नहीं है। HR होना सही इंसानों को सही उद्देश्य से जोड़ना है।

संस्था को सुरक्षित हाथों में सौंपना है। और हर बार फिर से विश्वास करना है कि कहीं न कहीं, कोई न कोई सही इंसान जरूर मिलेगा।

यही है एक संस्था में HR की असली भूमिका– जो सिर्फ ऑफिस में नहीं, समाज की जमीन पर खड़े होकर संगठन गढ़ता है।

हिसाब की किताब

चुनचुन झा,
अकाउंटेंट

एक अकाउंटेंट के रूप में जो अनुभव मैंने जिया है, उसे शब्दों में बाँधना आसान नहीं है। फिर भी, यह कहानी लिखते हुए लगता है जैसे जिंदगी के कई साल कागजों, अंकों और जिम्मेदारियों के बीच रोज़ जी रहा हूँ।

अकाउंट का काम ऐसा नहीं होता जिसमें "थोड़ी सी गलती" की गुंजाइश हो। यहाँ हर पैसा बोलता है। हर अंक की अपनी आवाज होती है। लोग अक्सर सोचते हैं कि अकाउंट का काम सरल है– आज कर लिया, दो–चार दिन बाद फिर कर लेंगे। लेकिन सच यह है कि अकाउंट कभी रुकता नहीं। यह रोज़ का काम है, हर दिन का, हर पल का। 24 घंटे दिमाग में घूमता रहता है– किसका पेमेंट रह गया, कौन सा बिल अप्रूव नहीं हुआ, कौन सा वाउचर एंट्री होना बाकी है।

फिर आया कोरोना का समय। वो दिन आज भी याद हैं, जब पूरा सिस्टम "वर्क फ्रॉम होम" हो गया था। घर से अकाउंट का काम करना किसी युद्ध से कम नहीं था। ऑनलाइन बिल चेक करना, टीम की फीस समय पर भेजना, रेंट का भुगतान, वेंडर पेमेंट– सब कुछ घर बैठे करना पड़ता था। नेटवर्क, सिस्टम, डेटा, डॉक्यूमेंट– हर चीज एक नई चुनौती बन चुकी थी। फिर भी हमने हिम्मत नहीं हारी। हालात कठिन थे, लेकिन जिम्मेदारियाँ उससे भी बड़ी थीं।

एक साधारण सा बिल भी आसान नहीं होता। जब हम टीम से बिल लेते हैं, तो उन्हें लगता है कि हम जरूरत से ज्यादा सवाल पूछ रहे हैं। "इतने सवाल क्यों?" लेकिन हमें देखना होता है कि खर्च सही है या नहीं,

नियमों के अनुसार है या नहीं। फिर हर बिल को जोड़ना, अकाउंट कोड डालना, डोनर के अनुसार स्टांप लगाना, अलग–अलग डोनर के बिल को मिक्स न होने देना, डायरेक्टर से अप्रूवल लेना, टैली में एंट्री करना, वाउचर बनाना और फाइल में सुरक्षित रखना– यह एक पूरी प्रक्रिया है, एक सिस्टम है।

और फिर आता है ऑडिट। 1000 बिल = 1000 सवाल।

हर बिल पर जवाब देना पड़ता है। हर एंट्री को जस्टिफाई करना पड़ता है। कई बार मन में आता है– "मैंने अकाउंट का काम क्यों चुना?"

लेकिन फिर वही जिम्मेदारी, वही प्रोफेशनलिज्म–एक–एक पैसे का हिसाब देना ही पहचान बन जाता है।

समय के साथ नियम बदलते रहते हैं। बड़े अमाउंट की खरीद में 3–4 कोटेशन, कम्पेरेटिव शीट, पर्चेज कमिटी की अप्रूवल, फिर पर्चेज ऑर्डर–हर स्टेप जरूरी है। सामान आने पर चेकिंग, स्टॉक रजिस्टर में एंट्र–हर चीज का रिकॉर्ड।

आज सब कुछ ऑनलाइन हो रहा है–NEFT से पेमेंट, बैंक ट्रांसफर, एक्सेल शीट में डेटा।

Account Number, IFSC Code, Bank Name, Amount–एक भी गलती भारी पड़ सकती है।

हर समय दिमाग चलता रहता है– "किसी का पेमेंट तो नहीं रह गया?" "टीम फीस, वेंडर पेमेंट, रेंट, बिल–सब समय पर गया या नहीं?"

"डोनर रिपोर्टिंग डेडलाइन से पहले भेजी या नहीं?"

फिर आते हैं नए चैलेंज– हजारों छोटे–छोटे बिल स्कैन करके डोनर को भेजना, हर महीने 7 तारीख से पहले TDS जमा करना, Quarterly TDS return file करना, टीम को उसकी कॉपी देना, साल के अंत में पूरे साल का अकाउंट तैयार करना, ऑडिट रिपोर्ट बनाना, 31 मार्च तक ऑडिट पूरा कराना, ITR फाइल करना, FC रिटर्न फाइल करना, सरकारी नियमों पर नजर रखना।

टेक्नोलॉजी आई–हार्ड डिस्क, डिजिटल स्टोरेज, ऑनलाइन सिस्टम। लेकिन कंप्यूटर पर पूरा भरोसा नहीं किया जा सकता, इसलिए मैन्युअल रिकॉर्ड भी चलते हैं।

वाउचर फाइल, कैश–बैंक रजिस्टर, स्टॉक रजिस्टर, एसेट्स रजिस्टर, कंसल्टेंसी फीस रजिस्टर, FD रजिस्टर, एडवांस रजिस्टर, डोनेशन रजिस्टर इन सबका रख–रखाव भी अपने आप में एक जिम्मेदारी है, एक संघर्ष है।

और इसी संघर्ष में एक अकाउंटेंट बनता है। कोई हीरो नहीं समझता, कोई तालियाँ नहीं बजाता– लेकिन हर संस्था की नींव अकाउंट पर टिकी होती है। ये कहानी सिर्फ मेरी नहीं है। ये हर उस अकाउंटेंट की कहानी है जो चुपचाप जिम्मेदारियाँ निभाता है, गलती से डरता है, ईमानदारी से काम करता है, और हर दिन अंकों के बीच अपनी जिंदगी जीता है।

पुलिस अंकल को बता दूंगी सच

अग्रीमा वर्मा,
खिलती कलियाँ, गुरुग्राम

बच्चों के लिए काम करते हुए मुझे ज्यादा समय नहीं हुआ था। जहाँ हम शिक्षा की समस्याओं से जूझते हैं, वहीं बस्तियों में रहने वाले लोगों के लिए सबसे पहली और बड़ी चिंता अक्सर उनकी सुरक्षा होती है। ऐसे ही एक दिन की बात है। मैं अपने रोजमर्रा के काम में व्यस्त थी कि अचानक एक कॉल आया। उस कॉल ने मुझे भीतर तक हिला दिया। हमारी एक शिक्षिका घबराई हुई आवाज में बोलीं

"मैम, एक बच्ची के साथ बहुत गलत हुआ है वह अभी मेरे पास है। क्या आप आ सकती हैं? हमें आगे क्या करना चाहिए?"

मैंने उन्हें शांत करते हुए पूरी बात सुनी। बच्ची के साथ उसके ही घर में यौन शोषण हुआ था। और यह एक बार की घटना नहीं थी—पिछले कुछ समय से वह यह सब सह रही थी। जिस व्यक्ति को एक बच्चा सबसे सुरक्षित मानता है, उसी ने उसके भरोसे को तोड़ा था। बच्ची कई दिनों से केंद्र नहीं आ रही थी। आसपास के लोगों को कुछ आशंका तो थी, पर डर के कारण वह हर बार चुप हो जाती थी।

यह सब सुनकर मैं भी कुछ पल के लिए घबरा गई। ऐसी घटनाएँ मैंने केवल सुनी थीं, पर आज मुझे इसके लिए खड़ा होना था। उस समय मेरे वरिष्ठ उपलब्ध नहीं थे, उनसे संपर्क भी नहीं हो पा रहा था। मैंने तुरंत प्रबंधन टीम के एक अन्य वरिष्ठ को जानकारी दी। उन्होंने मुझसे पूछा, "क्या तुम बच्ची को लेकर थाने जा सकती हो?"

एक पल के लिए मैं शांत हो गई। मन में सवाल आया क्या मैं यह कर पाऊँगी? लेकिन भीतर कहीं गुस्सा और साहस दोनों थे। उस बच्ची के साथ जो हुआ था, वह अन्याय था। और शायद वही क्षण था जब मैंने तय

किया कि डर से बड़ी है जिम्मेदारी।

जो लड़की अपने घर में छोटी–सी परेशानी पर भी परिवार से सलाह लेती थी, वह आज सैकड़ों किलोमीटर दूर एक बच्ची के लिए थाने जाने को तैयार हो गई। उस दिन शायद मैं सच में जिम्मेदार हो गई। केंद्र पहुँचकर मैंने बच्ची को देखा। उसकी आँखें झुकी हुई थीं, चेहरा पीला और थका हुआ। वह एक कोने में बैठी थी, जैसे खुद को दुनिया से छिपा लेना चाहती हो।

मैं उसके पास बैठी और धीरे से पूछा, "तुम्हें पता है ना, आगे क्या होगा? अब तुम्हें डरना नहीं है। जो गलत हुआ है, उसके लिए तुम्हें पुलिस के सामने अपनी बात बिना हिचक के कहनी होगी।" उसने धीमी आवाज में कहा, "मेरी मम्मी को मत बताना पर मैं पुलिस अंकल को सब सच बता दूँगी।"

बातों–बातों में यह भी सामने आया कि आरोपी उसका सौतेला पिता था। घर का खर्च उठाना, पैसे देना, कपड़े लाना इन सब के सहारे उसने घर में प्रभाव बना लिया था। माँ को सब पता होने के बावजूद भी वह चुप थीं। यह बात आज भी मुझे भीतर तक चोट पहुँचाती है। पर शायद गरीबी और लाचारी कई बार इंसान से सही–गलत का संतुलन छीन लेती है।

हम बच्ची को लेकर थाने पहुँचे। मुझे लगा था कि शिकायत दर्ज हो जाएगी और प्रक्रिया शुरू हो जाएगी। लेकिन वहाँ पहुँचकर एक अलग ही संघर्ष शुरू हुआ। शिकायत दर्ज करने से साफ मना कर दिया गया। तरह–तरह के सवाल पूछे गए। कहा गया कि पहले माँ को लेकर आओ। यहाँ तक कि यह भी कहा गया कि "ऐसी बस्तियों में तो अक्सर ऐसे मामले आते रहते हैं।" बच्ची के आचरण पर भी सवाल उठाए गए।

उन शब्दों ने मुझे भीतर तक हिला दिया। उस पल समझ आया कि न्याय पाना कितना कठिन है खासकर तब जब आप समाज के हाशिए से आते हों। हमसे कहा गया कि यदि मामला गलत निकला तो जिम्मेदारी संस्था को लेनी होगी। बिना अपने वरिष्ठ से अंतिम सलाह लिए मैं लिखित जिम्मेदारी नहीं लेना चाहती थी।

उस शाम हमें निराश होकर लौटना पड़ा। उस रात मैं सो नहीं पाई। मन में बेचौनी थी। घर पर भी मैंने इस बारे में कुछ नहीं बताया। शायद अगर बताती तो मुझे रोक दिया जाता। उनके लिए मैं अभी–अभी कॉलेज से निकली एक लड़की ही थी। पर मैंने तय कर लिया था मैं पीछे नहीं हटूँगी।

अगले दिन मेरे वरिष्ठ शहर पहुँचे। हमने पूरी रणनीति के साथ दोबारा प्रयास करने का निर्णय लिया। हम फिर बस्ती गए। बच्ची के भाई–बहनों को स्थिति बताई। धीरे–धीरे समर्थन जुटाया गया। बच्ची ने खुद हेल्पलाइन नंबर पर कॉल कर अपनी बात रखी।

अब देर करना संभव नहीं था। हम दोबारा थाने पहुँचे। इस बार असली लड़ाई शुरू हुई। बच्ची से बार–बार वही सवाल पूछे गए। उसकी बातों में विरोधाभास खोजने की कोशिश हुई। उसके व्यवहार पर संदेह जताया गया। पर इस बार हमने हार नहीं मानी। हम डटे रहे। अंततः संबंधित अधिकारी का सहयोग मिला। कुछ ही घंटों में आरोपी को तलाश कर थाने लाया गया। पूछताछ शुरू हुई।

माँ भी थाने पहुँचीं। उन्होंने आरोपी को बचाने की बहुत कोशिश की–कभी मजबूरी का हवाला देकर, कभी अंधविश्वास की बातें करके। यहाँ तक कहा कि "उसे छोड़ दीजिए, घर में और भी बच्चे हैं।" उस क्षण मुझे सबसे अधिक पीड़ा हुई–कैसे एक माँ अपनी बच्ची के दर्द को नजरअंदाज कर सकती है?

लेकिन हमने हार नहीं मानी। विधिक प्रक्रिया सुनिश्चित की गई। बच्ची को संबंधित प्राधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किया गया ताकि उसे संरक्षण मिल सके। आगे की कानूनी कार्रवाई शुरू हुई और एफआईआर दर्ज हुई।

वह दिन आसान नहीं था। कई बार लगा कि व्यवस्था की दीवारें बहुत ऊँची हैं। पर जब मन ठान ले कि अन्याय को स्वीकार नहीं करना है, तो रास्ते बनते जाते हैं।

आज की तारीख में वह व्यक्ति, एड़ी–चोटी का जोर लगाने के बावजूद चाहे बस्ती के लोगों को डराना हो या पैसों का लालच देकर बच्ची के भाई को प्रभावित करने की कोशिश– अपनी मंशा में सफल नहीं हो पाया। हमारी कर्तव्यनिष्ठ कार्यकर्ता अपने बयान पर दृढ़ता से कायम रहीं। उनके साहस और स्पष्ट गवाही के कारण आज उस व्यक्ति को जमानत नहीं मिल सकी है। आज भी यह लड़ाई पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है। पर एक सुकून है, उस दिन हमने चुप्पी को जीतने नहीं दिया।

आंकड़ों के पीछे छुपे संघर्ष

पवन सोनी,
ट्विंकलिंग स्टार्स, जयपुर

जयपुर के एक घनी बस्ती वाले समुदाय में चेतना संस्था द्वारा एक वैकल्पिक शिक्षा केंद्र संचालित किया जाता है। सुबह जब बच्चे वहाँ पहुँचते हैं तो किसी के हाथों में अभी भी काम की थकान होती है, किसी की आँखों में अधूरी नींद, और किसी के मन में यह संकोच कि क्या वह सच में स्कूल की नियमित पढ़ाई निभा पाएगा। रिपोर्ट में यही बच्चे नाम, आयु और उपस्थिति के नंबर बन जाते हैं, लेकिन जमीन पर वे अपनी परिस्थितियों और संघर्षों के साथ खड़े होते हैं।

परियोजना के अंतर्गत बच्चों को पहले वैकल्पिक शिक्षा केंद्र से जोड़ा जाता है, जहाँ उन्हें बुनियादी शिक्षा और स्कूल के वातावरण के लिए तैयार किया जाता है। इसके बाद निकटवर्ती सरकारी विद्यालयों में उनका प्रवेश कराया जाता है और फिर नियमित फॉलोअप के माध्यम से यह सुनिश्चित किया जाता है कि वे पढ़ाई से जुड़े रहें। कागज पर यह प्रक्रिया सरल और व्यवस्थित दिखती है, लेकिन वास्तविकता कई परतों में सामने आती है।

हमारी टीम के संयुक्त प्रयासों से अब तक कुल 664 बच्चों को मुख्यधारा की शिक्षा से जोड़ा गया है। इनमें 352 बालक और 312 बालिकाएँ शामिल हैं। जब यह संख्या सामने आती है तो यह एक उपलब्धि का संकेत देती है। 664 नामांकन। 664 नए अवसर।

लेकिन कहानी केवल नामांकन पर समाप्त नहीं होती।

वर्तमान स्थिति के अनुसार इन 664 बच्चों में से 454 बच्चे नियमित रूप से विद्यालय जा रहे हैं, जबकि 210 बच्चे विभिन्न कारणों से विद्यालय से वंचित हो गए हैं। रिपोर्ट में यह केवल दो कॉलम होते हैं। एक में नियमित उपस्थिति, दूसरे में अनियमितता। लेकिन जमीन पर इन 210 के पीछे कई जटिल वास्तविकताएँ होती हैं। सबसे प्रमुख कारण परिवारों का

आजीविका की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पलायन करना रहा है। कई बार पूरा परिवार अचानक स्थान बदल देता है और बच्चे स्कूल की निरंतरता से कट जाते हैं।

कुछ समय पहले समीक्षा बैठक के दौरान यह भी पाया गया कि इसी समुदाय के कुछ बच्चों का स्कूल में प्रवेश तो हो गया था, लेकिन उनकी नियमित उपस्थिति कम हो रही थी। रिपोर्ट में यह बस एक गिरता हुआ प्रतिशत था। एक कॉलम में लाल रंग का संकेत। देखने में साधारण, पर उसके पीछे कारण जानना आवश्यक था।

जब समुदाय में जाकर बातचीत की गई तो तस्वीर स्पष्ट हुई। रोहित (परिवर्तित नाम), 12 वर्ष, हाल ही में कक्षा में दाखिल हुआ था, लेकिन सुबह वह अपने पिता के साथ ठेले पर हाथ बँटाने लगा था ताकि घर की आय में मदद कर सके। जमीला (परिवर्तित नाम), 11 वर्ष, नई कक्षा में बैठते हुए असहज महसूस करती थी क्योंकि उसे पाठ्यपुस्तकें समझने में कठिनाई हो रही थी। आरती (परिवर्तित नाम), 10 वर्ष, नियमित रूप से स्कूल तो जाती थी, पर पढ़ाई में पीछे रह जाने के डर से उसका आत्मविश्वास कम होने लगा था।

रिपोर्ट में यह केवल उपस्थिति की कमी थी। समुदाय में यह बच्चों का संघर्ष था, परिवारों की मजबूरी थी और नए वातावरण में ढलने की चुनौती थी।

इन तथ्यों के आधार पर वैकल्पिक शिक्षा केंद्र में अतिरिक्त सहयोग सत्र आयोजित किए गए। बच्चों को पाठ समझाने और अभ्यास कराने पर विशेष ध्यान दिया गया। परिवारों से पुनः संवाद किया गया और उन्हें समझाया गया कि शुरुआती कठिनाइयाँ स्वाभाविक हैं। विद्यालय के शिक्षकों के साथ समन्वय बढ़ाया गया ताकि बच्चों को अतिरिक्त शैक्षणिक समर्थन मिल सके।

धीरे–धीरे उपस्थिति में सुधार दिखाई देने लगा। इस बार जब रिपोर्ट तैयार हुई और प्रतिशत बढ़ा हुआ दिखा, तो वह केवल सुधरता हुआ ग्राफ नहीं था। वह रोहित (परिवर्तित नाम) के समय पर स्कूल पहुँचने की कहानी थी। वह जमीला (परिवर्तित नाम) के आत्मविश्वास में लौटती स्थिरता थी। वह आरती (परिवर्तित नाम) की खुशी थी, जब उसने पहली बार कक्षा में हाथ उठाकर उत्तर दिया।

664 का आंकड़ा अब मेरे लिए केवल उपलब्धि नहीं है। 454 की नियमितता केवल प्रतिशत नहीं है। और 210 की अनुपस्थिति केवल कमी

नहीं है। ये सभी मिलकर हमें यह बताते हैं कि शिक्षा की प्रक्रिया सतत है।

इस अनुभव ने यह स्पष्ट किया कि नंबर केवल नंबर नहीं होते। वे संकेत देते हैं कि कहाँ अतिरिक्त ध्यान देने की आवश्यकता है। यदि केवल दाखिले की संख्या को उपलब्धि मान लिया जाए और निरंतर फॉलोअप की गहराई को न समझा जाए, तो वास्तविक तस्वीर अधूरी रह जाती है।

हर संख्या के पीछे एक बच्चा है। हर बच्चे के पीछे एक कहानी है। और हर कहानी हमें याद दिलाती है कि बदलाव आंकड़ों से नहीं, निरंतर प्रयास से आता है।

कच्ची कलम से बढ़ते कदम

नीलम नेगी,
नन्हे परिंदे, नोएडा

जब मैंने चेतना के साथ शिक्षा समन्वयक के रूप में अपनी यात्रा शुरू की, तब मुझे लगा था कि मेरा कार्य केवल बच्चों की पढ़ाई सुनिश्चित करना है। परंतु समय के साथ समझ आया कि यह जिम्मेदारी उससे कहीं अधिक व्यापक है–यह उन सपनों की रक्षा करने की जिम्मेदारी है, जो इन बच्चों की आँखों में चुपचाप पलते हैं। शिक्षा उनके लिए केवल एक अधिकार नहीं, बल्कि गरिमा, पहचान और बेहतर भविष्य की दिशा में पहला सशक्त कदम है।

विकास क्षेत्र में प्रवेश करते ही जब मैंने सड़क से जुड़े बच्चों की वास्तविकताओं को करीब से देखा, तो मन भीतर तक प्रभावित हुआ। आँकड़ों के पीछे छिपे संघर्ष, असुरक्षा और उपेक्षा की कहानियाँ केवल तथ्य नहीं थे, बल्कि एक ऐसी सच्चाई थी, जिसे मुख्यधारा का समाज अक्सर अनदेखा कर देता है। नन्हे परिंदे पहल के अंतर्गत बस्तियों में नियमित फील्ड विजिट और परिवारों से संवाद ने मुझे यह सिखाया कि शिक्षा तक पहुँच केवल इच्छाशक्ति से नहीं, बल्कि व्यवस्था और सहयोग से भी जुड़ा है।

नामांकन प्रक्रिया के दौरान अनेक बच्चों के पास आधार कार्ड या जन्म प्रमाण पत्र नहीं थे। आजीविका की तलाश में लगातार स्थानांतरण के कारण दस्तावेज बन पाना कठिन हो जाता है। जब परिवार का हर दिन "रोज कमाओ, रोज खाओ" की परिस्थिति में बीतता हो, तब शिक्षा और कागजी प्रक्रियाएँ स्वाभाविक रूप से पीछे छूट जाती हैं। ऐसे समय में मैंने स्ट्रीट एजुकेटर्स के साथ मिलकर समुदाय के प्रतिनिधियों और नजदीकी आधार केंद्रों से समन्वय स्थापित किया। छोटे–छोटे प्रयासों से दस्तावेज बनने लगे और हर बने हुए प्रमाण पत्र के साथ एक बच्चे का आत्मविश्वास भी मजबूत होता गया।

दस्तावेज बनने के बाद भी चुनौतियाँ समाप्त नहीं हुईं। कुछ विद्यालयों

ने खुले मन से सहयोग किया, जबकि कुछ स्थानों पर अनिच्छा का सामना करना पड़ा। एक विद्यालय की प्रधानाचार्या द्वारा चार बच्चों के प्रवेश से इंकार किया जाना आज भी स्मरण में है। उस दिन मैंने संबंधित एजुकेटर के साथ विद्यालय जाकर परियोजना की प्रकृति, उद्देश्य और बच्चों के समग्र विकास के लिए किए जा रहे प्रयासों को विस्तार से साझा किया। मैंने यह भी स्पष्ट किया कि नन्हे परिंदे परियोजना केवल शैक्षणिक सहयोग ही नहीं, बल्कि जीवन कौशल, स्वच्छता और अनुशासन की समझ भी विकसित करता है।

उस अनुभव ने मन को आहत तो किया, परंतु संकल्प को और दृढ़ बना दिया। ऐसे ही क्षणों में हमारे निदेशक का मार्गदर्शन और प्रेरणा हमारे लिए ऊर्जा का स्रोत बनता है। वे अक्सर कहते हैं– "हर बच्चा अवसर का हकदार है; हमारी भूमिका है उस अवसर तक उसका हाथ थामकर पहुँचना।" उनका यह विश्वास और संवेदनशील नेतृत्व हमें हर चुनौती के बीच सकारात्मक दृष्टिकोण बनाए रखने की शक्ति देता है।

लगातार प्रयासों और टीम के सामूहिक समर्पण से 435 सड़क से जुड़े बच्चों को औपचारिक विद्यालय प्रणाली से जोड़ा जा सका। विद्यालय में प्रवेश के बाद भी उनकी बुनियादी शैक्षणिक समझ को सुदृढ़ करने के लिए निरंतर शैक्षणिक सहयोग सुनिश्चित किया गया। जब किसी बच्चे की आँखों में पुलिस अधिकारी, सैनिक या शिक्षक बनने का सपना झलकता है, तो लगता है कि हमारी मेहनत ने सही दिशा पकड़ी है।

फिर भी, 344 बच्चे अब भी विद्यालय से बाहर हैं। इस संदर्भ में जनवरी 2023 में विकास भवन में आयोजित बैठक में प्रबंधन टीम के साथ हमने इन बच्चों की स्थिति को प्रमुखता से रखा। अधिकारियों द्वारा यह आश्वासन मिला कि बच्चों का प्रवेश सुनिश्चित किया जाएगा और आवश्यक दस्तावेज बाद में जमा किए जा सकते हैं। यह आश्वासन हमारे लिए आशा की किरण था– एक ऐसा विश्वास कि व्यवस्था और संवेदनशीलता मिलकर बदलाव ला सकती है।

आज, एक शिक्षा समन्वयक के रूप में मेरा विश्वास अटल है–कोई भी बच्चा शिक्षा के अधिकार से वंचित न रहे। "सबके लिए शिक्षा" केवल एक नारा नहीं, बल्कि एक नैतिक दायित्व है।

नन्हे परिंदे के साथ यह यात्रा मेरे लिए केवल पेशेवर दायित्व नहीं, बल्कि संवेदना, संघर्ष और संकल्प की कहानी है। निदेशक की प्रेरणा और टीम के सहयोग के साथ हम निरंतर प्रयासरत हैं कि हर बच्चा औपचारिक शिक्षा प्रणाली से जुड़े और अपने सपनों को नई उड़ान दे सके।

अगर कुछ गड़बड़ हो गया तो?

अनुश्री,
स्ट्रीट टू स्ट्रेंथ

मेरे जीवन का एक यादगार अध्याय

आज मैं अपनी उस यात्रा को शब्दों में उतार रही हूँ, जिसने मुझे भीतर से बदल दिया। Rising Street Champs Sports Carnival 2025 मेरे लिए केवल एक खेल प्रतियोगिता नहीं था, बल्कि यह सीख, डर, साहस, नेतृत्व और टीमवर्क की गहरी कहानी थी।

जिम्मेदारी का डर और हिम्मत की शुरुआत तब हुई जब मुझे बताया गया कि इस पूरे कार्यक्रम की योजना और समन्वय में मेरी मुख्य भूमिका होगी, तो मैं कुछ क्षणों के लिए बिल्कुल शांत हो गई। मैंने पहले कभी इतना बड़ा इवेंट आयोजित नहीं किया था। मन में कई सवाल थे– "500 बच्चों की जिम्मेदारी कैसे उठाऊँगी?" और "अगर कुछ गड़बड़ हो गया तो?"

उसी समय मेरे वरिष्ठ ने मेरा हौसला बढ़ाया। उन्होंने कहा, "नेतृत्व घबराने से नहीं, जिम्मेदारी लेने से आता है।" उनके इन शब्दों ने मुझे भीतर से मजबूत किया। कार्यक्रम प्रमुख ने हर चरण में मेरा मार्गदर्शन किया–मीटिंग कैसे आयोजित करनी है, योजना को व्यवस्थित रूप से कैसे लिखना है, किन बातों को प्राथमिकता देनी है। उनका विश्वास और समर्थन मेरे लिए ऊर्जा का स्रोत बन गया।

कार्यक्रम की सफलता के लिए सबसे महत्वपूर्ण था एक उपयुक्त और सुरक्षित स्थान का चयन। हमने कई स्थानों का निरीक्षण किया।

हर स्थान पर जाकर मैं यही सोचती थी– "क्या यहाँ हमारे बच्चे सहज और सुरक्षित महसूस करेंगे?"

कई निरीक्षणों और चर्चाओं के बाद अंततः हमने जसोला, स्थित एक वैन्यू का चयन किया। वहाँ की साफ–सफाई, विशाल मैदान, बैठने की व्यवस्था और स्टाफ का सहयोग हमें आश्वस्त करने के लिए पर्याप्त था। जसोला के स्टाफ ने भी बुकिंग, व्यवस्था और पानी की सुविधा में पूरा सहयोग दिया।

अब असली कार्य शुरू हुआ। Street to Strength टीम, हमारे एजुकेटर्स और कोच लगातार बच्चों के साथ अभ्यास सत्र आयोजित कर रहे थे। मैंने बच्चों में धीरे–धीरे आता आत्मविश्वास देखा। वे नियम समझ रहे थे, रणनीति बना रहे थे, और टीमवर्क सीख रहे थे।

जो लड़कियाँ पहले झिझकती थीं, वे अब टीम का नेतृत्व कर रही थीं। यह परिवर्तन मेरे लिए बेहद भावनात्मक था। मुझे महसूस हुआ कि हम केवल खेल नहीं सिखा रहे, बल्कि आत्मविश्वास और साहस भी विकसित कर रहे हैं।

29 नवम्बर की सुबह मैं बहुत जल्दी पहुँच गई थी। दिल में हल्की घबराहट थी, पर उससे कहीं अधिक उत्साह। जब बच्चे ढोल की आवाज के साथ मैदान में प्रवेश कर रहे थे, उनकी आँखों की चमक देखकर मेरी सारी थकान दूर हो गई।

कार्यक्रम में डोनर की उपस्थिति ने बच्चों का आत्मविश्वास और बढ़ा दिया। उन्होंने बच्चों को खेलते देखा, उनसे बातचीत की और प्रोत्साहित किया। मैच अनुशासन और सम्मान के साथ चले। जीतने वाली टीम खुश थी, पर हारने वाली टीम भी सम्मान के साथ मैदान से बाहर आई।

ट्रॉफियाँ बाँटी गईं, तस्वीरें ली गईं और बच्चे मुस्कुराते हुए अपने–अपने घर लौट गए। उस समय माहौल खुशी और संतोष से भरा हुआ था, लेकिन मेरे लिए असली उपलब्धि ट्रॉफियाँ नहीं थीं। मेरी सच्ची उपलब्धि थी बच्चों के चेहरे पर दिखता बढ़ता आत्मविश्वास, खेल के मैदान में लड़कियों की सक्रिय और निर्भीक भागीदारी, हर टीम द्वारा दिखाया गया अनुशासन और शानदार टीमवर्क, और सबसे बढ़कर मेरा अपना विकसित होता नेतृत्व।

जिस दिन मैंने घबराते हुए सोचा था, "मैं कैसे करूँगी?", उसी दिन से शुरू हुई यह यात्रा आज मुझे यह सिखा गई है कि विकास की सीढ़ी चढ़ने के लिए अक्सर डर को पीछे छोड़ना जरूरी होता है। जब हम साथ मिलकर काम करते हैं, तो असंभव भी संभव हो जाता है, और अंततः बच्चों की सच्ची खुशी ही किसी भी प्रयास की सबसे बड़ी सफलता होती है।

आज अपनी डायरी में यह लिखते हुए मुझे गर्व और संतोष दोनों महसूस हो रहा है–यह केवल एक स्पोर्ट्स कार्निवल नहीं था, बल्कि मेरी नेतृत्व यात्रा की सशक्त और नई शुरुआत थी।

रिश्तों से बनता है रास्ता

ऋषभ मल्होत्रा,
ट्विंकलिंग स्टार्स, जयपुर

जब समुदाय में काम शुरू हुआ, तब सबसे बड़ी चुनौती केवल बच्चों को पढ़ाना नहीं थी, बल्कि उन्हें दोबारा स्कूल से जोड़ना था। कई बच्चे ऐसे थे जिनका स्कूल से रिश्ता वर्षों पहले टूट चुका था। कुछ कभी स्कूल गए ही नहीं थे। कुछ का नाम दर्ज हुआ था, लेकिन वे नियमित नहीं रह पाए। कई अभिभावकों ने कोशिश की थी, पर बार–बार निराश होकर लौट आए थे।

वैकल्पिक शिक्षा केंद्रों पर बच्चों के साथ बैठना इस यात्रा का पहला कदम था। अक्षर पहचान से लेकर सरल गणित तक, धीरे–धीरे बच्चों का आत्मविश्वास बढ़ाया गया। उनके भीतर यह विश्वास जगाना जरूरी था कि वे फिर से स्कूल के वातावरण में बैठ सकते हैं। साथ ही अभिभावकों के साथ लगातार संवाद किया गया। उन्हें समझाया गया कि पढ़ाई केवल औपचारिकता नहीं, भविष्य की संभावना है।

कुछ महीनों के प्रयास के बाद कुछ बच्चे ऐसे स्तर पर पहुँचे कि उन्हें स्कूल में प्रवेश दिलाया जा सके। लेकिन असली परीक्षा वहीं से शुरू हुई। स्कूल का दरवाजा केवल भौतिक नहीं होता, वह विश्वास का भी होता है।

पहली बार जब स्कूल जाकर 13 वर्षीय बालिका ममता (परिवर्तित नाम), जो कक्षा 6 में प्रवेश लेना चाहती थी, के लिए बात की गई, तो माहौल सहज नहीं था। शिक्षकों को संदेह था कि क्या यह बच्ची नियमित रह पाएगी। पहले भी कई बच्चों का नामांकन हुआ था, लेकिन निरंतरता नहीं बनी थी। स्पष्ट शब्दों में कहा गया कि यदि बच्ची अनियमित हुई तो इसकी जिम्मेदारी हमारी होगी।

उस दिन यह समझ आया कि केवल प्रवेश कराना पर्याप्त नहीं है। संबंध बनाना जरूरी है।

ममता का प्रवेश हुआ, लेकिन उसके साथ मैंने स्वयं के लिए एक वचन भी लिया। उसे नियमित भेजना, यदि एक दिन भी अनुपस्थित हो तो उसी दिन कारण जानना, परिवार से बात करना, कक्षा अध्यापक से प्रगति पर चर्चा करना। वैकल्पिक शिक्षा केंद्रों पर उसे अतिरिक्त अभ्यास और मार्गदर्शन देना ताकि वह कक्षा में पीछे न रह जाए। यह प्रक्रिया कुछ दिनों की ही नहीं थी, अब यह रोज़ का काम था।

ममता जैसे बच्चों का प्रवेश देखकर, धीरे–धीरे स्कूल का रवैया बदलने लगा। शुरुआत में बातचीत औपचारिक थी। बाद में संवाद खुलने लगा। शिक्षकों ने देखा कि संस्था के सदस्य केवल प्रवेश के समय नहीं, बल्कि लगातार विद्यालय आ रहे हैं। बच्चों की उपस्थिति और प्रगति पर चर्चा कर रहे हैं। जिम्मेदारी निभा रहे हैं।

एक दिन ऐसा भी आया जब स्कूल से स्वयं सूचना मिली कि एक बच्चा दो दिन से अनुपस्थित है। यह बदलाव का संकेत था कि अब संबंध केवल औपचारिक नहीं रहे। यह साझेदारी में बदल रहे थे।

धीरे–धीरे अन्य बच्चों का प्रवेश भी सहज होने लगा। जहाँ पहले हिचकिचाहट थी, वहाँ अब सहयोग दिखने लगा। कभी शिक्षक समुदाय में आए। कभी अभिभावकों की बैठक में शामिल हुए। संवाद दोतरफा होने लगा।

आज स्थिति यह है कि वैकल्पिक शिक्षा केंद्रों से जुड़े कई बच्चे विद्यालय में नियमित रूप से नामांकित और उपस्थित हैं। लेकिन इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि विद्यालय और टीम के बीच विश्वास की एक स्थायी कड़ी बन चुकी है। अब दोनों पक्ष यह मानते हैं कि यदि संस्था और विद्यालय मिलकर काम करें, तो समुदाय के बच्चों को मुख्य धारा में लाना संभव है।

इस यात्रा ने यह सिखाया कि शिक्षा केवल कक्षा की चार दीवारों तक सीमित नहीं है। वह संबंधों से मजबूत होती है। भरोसे से टिकती है। और साझा जिम्मेदारी से आगे बढ़ती है।

स्कूल तक का रास्ता दूरी से नहीं, रिश्तों से तय होता है। और जब रिश्ता बन जाता है, तो रास्ता अपने आप खुलने लगता है।

इसी प्रयास से जयपुर में कुल 667 दाखिले कराए गए। हर बच्चे की अलग व्यथा, अलग कहानी।

सड़क से संस्था तक-अकाउंट्स एडमिन का सफर

रज्जाक,
एडमिन

बात वर्ष 2010 की है। मैं निजामुद्दीन के पास रहता था। अन्य बच्चों की तरह मेरे जीवन में भी कोई विशेष उद्देश्य नहीं था। बस जैसे–तैसे जीवन चल रहा था–कभी कोई छोटा–मोटा काम कर लिया, जहाँ मौका मिला थोड़ा खेल–कूद लिया। इसी तरह दिन बीत रहे थे।

इसी दौरान एक दिन मेरी मुलाकात चेतना के एक कार्यकर्ता से हुई। उनसे मुझे पता चला कि सामाजिक संस्था चेतना सड़क से जुड़े बच्चों के लिए काम करती है। उस समय पढ़ाई–लिखाई में मेरी कोई खास रुचि नहीं थी, लेकिन कार्यकर्ताओं के व्यवहार और उनके अपनत्व ने मेरा दिल जीत लिया। धीरे–धीरे मैं चेतना के सेंटर जाने लगा।

कुछ समय बाद मुझे "बढ़ते कदम" नामक बच्चों के संगठन के बारे में पता चला। इस संगठन से जुड़कर मैंने संस्था के कामों को करीब से समझना शुरू किया। चूँकि उस समय मेरे पास कोई स्थायी काम नहीं था, एक दिन संस्था की ओर से मुझे निमंत्रण मिला कि क्या मैं ऑफिस बॉय के रूप में संस्था में काम करना चाहूँगा। उस समय मुझे समझ नहीं आया कि क्या करना चाहिए, लेकिन मैंने हाँ कर दी।

जब मैंने काम शुरू किया तो पता चला कि इस काम में ऑफिस की देखरेख, साफ–सफाई, चाय बनाना, आगंतुकों से बात करना, फोन उठाना आदि जिम्मेदारियाँ शामिल थीं। धीरे–धीरे मैं इस काम में रम गया और संस्था के बाकी कामों में भी ध्यान देने लगा।

इसी क्रम में एक काम था जो मुझे मिला वह अकाउंट्स से जुड़ा हुआ था। मुझे इसमें रुचि होने लगी। मैंने अकाउंट्स के काम को समझने की कोशिश शुरू की। शुरुआत में मुझे कहा गया कि मैं चेतना के वाउचर्स पर स्टैम्प लगाना सीखूँ। मैंने स्टैम्प लगाना शुरू किया। धीरे–धीरे मैं वाउचर

पढ़ने लगा और उस पर लिखी भाषा– क्रेडिट, डेबिट आदि–को समझने लगा। मेरी जिज्ञासा बढ़ती चली गई।

फिर 2012 में मेरे जीवन में बड़ा परिवर्तन आया। मुझे बताया गया कि अब मुझे अकाउंट्स में एडमिनिस्ट्रेशन और अकाउंट्स से जुड़े कार्यों के लिए तैयार किया जा रहा है। यह सुनकर मेरी खुशी का ठिकाना नहीं रहा।

आज इस बात को लगभग 13 साल हो चुके हैं। अब मैं एकाउंट्स टीम में एक परिपक्व टीम सदस्य की तरह पूरी लगन से काम करता हूँ। रोजाना सैकड़ों वाउचर मेरी नजरों से गुजरते हैं और मैं पूरी सावधानी से हर काम को देखता हूँ–हर कोटेशन, हर सूची और हर बिल। बिल के साथ कौन–सी रिपोर्ट लगानी है, किस प्रकार की मुहर लगानी है–यह सब अब मेरी दिनचर्या का हिस्सा बन चुका है।

कभी–कभी मुझे ऐसा महसूस होता है कि चेतना की कोई भी बड़ी गतिविधि मेरे जुड़ाव के बिना पूरी नहीं होती। ऑफिस में कौन–सी चीज कहाँ रखी है, कितनी मात्रा में है, किस स्टॉक में क्या उपलब्ध है–इन सबका पूरा लेखा–जोखा मेरे पास रहता है।

मैं खुद को भाग्यशाली मानता हूँ कि मैंने सड़क के जीवन से निकलकर आज चेतना के साथ जुड़कर इतना कुछ सीखा और पाया है। अब यह संस्था ही मेरा परिवार बन गई है।

हालाँकि एक समय ऐसा भी आया था जब मैंने कुछ और करने के बारे में सोचा। मैंने अपने मन की बात निदेशक को बताई और उन्होंने भी अनमने मन से हाँ कर दी। लेकिन लगभग एक महीने बाद ही मैंने उनसे दोबारा निवेदन किया कि मैं वापस आना चाहता हूँ।

उस दिन के बाद से आज तक मैं चेतना में एडमिन और अकाउंट्स के पद पर कार्य कर रहा हूँ। इस संस्था ने मुझे जीवन के अनुभव, उतार–चढ़ाव, सामाजिक सरोकारों की समझ और साथ ही अकाउंट्स के दृष्टिकोण से लेखा–जोखा करना सिखाया है।

बंद घर की खुली खिड़की

सिमरन,
आफ्टरकेयर प्रोग्राम

जब मैंने "चेतना" के साथ अपने इस सफर की शुरुआत की, तब मेरे मन में उत्साह के साथ–साथ एक हल्का सा डर भी था। यह मेरे लिए सिर्फ एक नई नौकरी या जिम्मेदारी नहीं थी, बल्कि एक बिल्कुल नई दुनिया में कदम रखने जैसा अनुभव था। शुरुआत में ही मुझे आफ्टरकेयर यूथ की जिम्मेदारी सौंपी गई। सच कहूँ तो उस समय मुझे बिल्कुल अंदाज़ा नहीं था कि मैं इस भूमिका को कैसे निभा पाऊँगी, क्योंकि इससे पहले मैंने कभी युवाओं के साथ इतने करीब से काम नहीं किया था।

धीरे–धीरे जब मैंने उन युवाओं से मिलना शुरू किया, तो मुझे एहसास हुआ कि मैं केवल लोगों से नहीं, बल्कि अनगिनत कहानियों, संघर्षों और भावनाओं से रूबरू हो रही हूँ। हर एक युवा अपने भीतर एक पूरी दुनिया समेटे हुए था। कुछ बच्चे ऐसे थे जो चाइल्ड केयर इंस्टीट्यूशन्स (CCIs) से बाहर आए थे और अब अपनी पहचान और आत्मनिर्भरता की तलाश में थे। कुछ ऐसे थे जो बिना किसी गलती के कानूनी मामलों में फँस गए थे। कुछ अपने परिवार से बिछड़ गए थे, और कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने जीवन में इतनी पीड़ा झेली थी कि उनके अनुभव सुनकर दिल भर आता था।

उन सबकी कहानियाँ सुनते–सुनते मेरे भीतर एक गहरा परिवर्तन आने लगा। मुझे एहसास हुआ कि जिन मुश्किलों को मैं अब तक बहुत बड़ी समझती थी, वे वास्तव में कितनी छोटी हैं। उनकी कहानियाँ केवल शब्द नहीं थीं, बल्कि वे संघर्ष, साहस, धैर्य और उम्मीद की जीवंत मिसाल थीं। हर कहानी ने मुझे कुछ नया सिखाया, हर अनुभव ने मुझे और अधिक संवेदनशील और समझदार बनाया।

मैं यहाँ एक ऐसी ही कहानी साझा करना चाहती हूँ, जिसने मुझे भीतर तक झकझोर दिया।

एक लड़की थी, लगभग 20 साल की। बचपन में ही वह अपने

माता–पिता से बिछड़ गई थी और उसे एक CCI में रखा गया था। कई वर्षों बाद अथक प्रयासों के बाद वह अपने परिवार से मिल पाई। लेकिन जिस घर को उसने एक सहारा समझा था, वहाँ की स्थिति बेहद कठिन थी। घर में खाने तक के लिए पैसे नहीं थे, पढ़ाई करना तो जैसे एक सपना बन चुका था। उसके पिता शराब की लत में डूबे रहते थे, माँ अक्सर बीमार रहती थीं, और छोटे भाई–बहनों की जिम्मेदारी भी उसी के कंधों पर आ गई थी।

इतनी कठिन परिस्थितियों के बावजूद उसने हार नहीं मानी। किसी तरह उसे हमारे कार्यक्रम के बारे में जानकारी मिली, और वहीं से उसकी जिंदगी ने एक नया मोड़ लिया। उसने फिर से पढ़ाई शुरू की, कंप्यूटर कौशल सीखा, और समुदाय के साथ काम करना शुरू किया। उसके भीतर एक सपना था– एक सामाजिक कार्यकर्ता बनने का, और उसने इस सपने को पूरी शिद्दत से अपनाया।

उसकी मेहनत और लगन रंग लाई। उसे एक गैर–सरकारी संगठन (NGO) में काम करने का अवसर मिला। उसने वहाँ इतनी निष्ठा और समर्पण के साथ काम किया कि केवल एक वर्ष के भीतर उसका पदोन्नति हो गया। आज वह न केवल आत्मनिर्भर है, बल्कि अपने पूरे परिवार का सहारा भी बनी हुई है। वह अपने सपनों को जी रही है, अपने शौक पूरे कर रही है, और सबसे खास बात– वह अपना घर खुद बना रही है, एक–एक ईंट जोड़कर।

जब उसने यह सब मुझे बताया, तो मेरी आँखें नम हो गईं। उसके चेहरे पर जो आत्मविश्वास और संतोष था, वह शब्दों में बयां करना मुश्किल है। उसकी कहानी ने मुझे यह सिखाया कि इंसान की असली ताकत उसकी परिस्थितियों में नहीं, बल्कि उसके हौसले में होती है।

उस दिन मुझे एक बहुत गहरी बात समझ आई– कभी–कभी हमारे पास सब कुछ होते हुए भी हम खुश नहीं रह पाते, और कभी–कभी कुछ लोगों के पास बहुत कम होता है, फिर भी वे उसी में अपनी खुशियाँ ढूंढ लेते हैं।

चेतना में काम करना मेरे लिए केवल एक ज़िम्मेदारी नहीं, बल्कि एक ऐसा आईना बन गया है– जिसमें मैंने दुनिया को भी देखा और खुद को भी समझा। यह सफर मुझे हर दिन कुछ नया सिखाता है– इंसानियत, सब्र और उम्मीद की असली पहचान।

यह अनुभव मेरे जीवन का एक ऐसा अध्याय बन गया है, जिसे मैं हमेशा संजोकर रखूँगी, और शायद यही मेरी "चेतना डायरी" की सबसे सुंदर और सच्ची शुरुआत है।

राज बहादुर को मिली नई राह

राज बहादुर,
नन्हे परिंदे, नोएडा

जब मैं "चेतना" में इंटरव्यू देने आया था, तब मेरे मन में कई तरह के सवाल थे। मेरे हर एक सवाल को सुना एवं समझा गया, मुझे बहुत सी बातें समझाई गईं—कैसे काम होगा, क्या जिम्मेदारियाँ होंगी, और किन परिस्थितियों में काम करना पड़ेगा। सब कुछ सुनकर मैं थोड़ा उत्साहित था और थोड़ा घबराया हुआ भी।

इंटरव्यू के बाद मुझे एक विजिट पर भेजा गया। वहां पहुंचकर मैंने एक मोबाइल एजुकेशन वैन देखी, जिस पर सुंदर—सुंदर चित्र बने हुए थे। वैन के पास बिछी कुर्सियों पर बच्चे बैठे थे। उनके चेहरे पर मासूम खुशी थी। चेतना की टीम के एक सदस्य ने मुझे वहां काम करने की पूरी जानकारी दी—कैसे यह वैन ही बच्चों का चलता—फिरता क्लासरूम है, और कैसे अलग—अलग जगहों पर जाकर बच्चों को पढ़ाया जाता है।

मैंने बच्चों से थोड़ी बातचीत की। उनके सरल सवाल और निश्छल हंसी ने मेरे मन को छू लिया। उस दिन मैंने पूरा काम देखा—कैसे वैन खड़ी की जाती है, कैसे अंदर की तैयारी होती है, और कैसे बच्चों के लिए पढ़ाई का माहौल बनाया जाता है। उसी दिन मेरे मन में एक नया उत्साह जागा और संस्था की इस पहल से जुड़ने का निर्णय ले लिख।

जब मैंने चेतना में अपना पहला दिन जॉइन किया, तो वैन के अंदर की दुनिया देखकर मैं हैरान रह गया। वहां पढ़ाई का सामान, किताबें, चार्ट, रंग—बिरंगी चीजें—सब कुछ सलीके से रखा हुआ था। हम वैन में बैठकर तय लोकेशन की ओर निकलते। वहां पहुंचकर बस को सही जगह पर खड़ा करते, साफ—सफाई करते और फिर अंदर से सामान निकालकर क्लासरूम तैयार करते।

कभी—कभी काम का दबाव बहुत बढ़ जाता। गर्मी, धूल, मौसम की

मार–सब मिलकर चिड़चिड़ापन पैदा कर देते। कई बार मन बेचैन होता और मन करता कि सब छोड़ दूं। लगता, "मैं कहां आ गया हूं?"

लेकिन जैसे ही बच्चों के बीच बैठता, उनसे बातें करता, उनका उत्साह देखता–मेरा मन शांत हो जाता। उनके हालात देखकर एहसास होता कि वे कितनी कठिन परिस्थितियों में भी मुस्कुराना जानते हैं। तब मेरी बेचैनी धीरे–धीरे कम हो जाती और दिल में एक सुकून भर जाता।

अब मैं चेतना में काम कर रहा हूं। यहां काम कभी ऊपर तो कभी नीचे होता रहता है, चुनौतियां भी आती हैं। लेकिन हर दिन बच्चों की आंखों में सीखने की चमक देखकर लगता है कि मैं सही जगह पर हूं।

मुझे गर्व है कि मैं उस वैन का हिस्सा हूं जो सिर्फ सड़कों पर नहीं चलती, बल्कि बच्चों के सपनों को भी आगे बढ़ाती है। मैं ज्यादा पढ़ा–लिखा तो नहीं हूं लेकिन बच्चों के लिए कुर्सियां सजाते हुए मन में एक सुकून हमेशा आता है कि मेरे माध्यम से और मेरे काम के जरिए आज कितने बच्चे पढ़ाई के सफर में अपने कदम आगे बढ़ा रहे हैं।

विश्वास का बीज

राजेंद्र कुमार,
खिलती कलियाँ, गुरुग्राम

एक साधारण–सी शाम थी। मैं ऑफिस से लौटकर रसोई में खाना बना रहा था। दिन भर की थकान के बाद वही कुछ पल मेरे अपने होते थे। तभी मोबाइल की घंटी बजी। स्क्रीन पर निदेशक का नाम चमक रहा था। मैंने तुरंत फोन उठाया। "राजेंद्र, अब आपको गुरुग्राम जाना होगा," सर की आवाज हमेशा की तरह शांत लेकिन दृढ़ थी। "वहाँ चेतना को एक बड़ा प्रोजेक्ट मिल रहा है। मैं चाहता हूँ कि आप उसे लीड करें।"

कुछ क्षण के लिए जैसे समय रुक गया। गुरुग्राम, दिल्ली एनसीआर, वह जगह जहाँ जाने की मैंने कभी इच्छा नहीं की थी। भीड़, भागदौड़, तेज रफ्तार जिंदगी से दूर– मुझे हमेशा छोटे शहरों में काम करना ज्यादा अच्छा लगता था। लेकिन दूसरी तरफ एक सच्चाई यह भी थी कि मैंने आज तक सर को कभी 'ना' नहीं कहा था। उनके विश्वास ने ही मुझे हर नई जिम्मेदारी निभाने की ताकत दी थी।

मैंने धीरे से कहा, "जी सर।" फोन रख दिया, पर मन में जैसे हलचल शुरू हो गई। खाना खाकर जब बिस्तर पर लेटा, तो आँखें बंद होते ही झाँसी और लखनऊ की पूरी यात्रा सामने आने लगी – संघर्ष, सीख, जिम्मेदारियाँ और अनगिनत यादें। साल 2010, जब सर ने मुझे आगरा कैंट से झाँसी भेजा था। मेरी शादी को सिर्फ दो साल हुए थे। परिवार से दूर जाना आसान नहीं था। नई जगह, नया शहर, कोई जान–पहचान नहीं। लेकिन संस्था का काम मेरे लिए सिर्फ नौकरी नहीं था –वह एक मिशन था।

झाँसी पहुँचा तो सबसे पहली चुनौती थी –काम तुरंत शुरू करना। न ऑफिस की जगह थी, न टीम। लगभग दो महीने मैं एक सस्ते से होटल में रहा। दिन में फील्ड विजिट और शाम को मकान की तलाश। मैंने लगभग

10–12 मकान देखे। अंततः एक छोटा–सा मकान पसंद आया। उसमें दो कमरे थे – एक में हमारा ऑफिस बना और दूसरे कमरे में मैं खुद रहने लगा।

साधारण–सा सेटअप था, लेकिन सपने बड़े थे। जब ऑफिस के लिए टेबल, कुर्सियाँ और अन्य सामान खरीदा, तो पक्के बिलों को लेकर बहुत परेशानी आई। उस समय हर छोटी बात सीखनी पड़ती थी – वित्तीय प्रक्रिया, दस्तावेज और रिपोर्टिंग। कई बार हताशा होती थी, लेकिन सर हर कदम पर समझाते थे। धीरे–धीरे काम ने रफ्तार पकड़ी। जब हम फील्ड में उतरे, तो एक कड़वी सच्चाई सामने आई – झाँसी में चाइल्ड प्रोटेक्शन सिस्टम लगभग निष्क्रिय था। न बच्चों के लिए सुरक्षित होम, न सक्रिय बाल कल्याण समिति (CWC)।

हमने CWC की सूची निकाली। कई सदस्यों को तो यह तक पता नहीं था कि वे CWC में नामित हैं। हम उनके घर–घर गए, बैठकर समझाया कि उनकी क्या भूमिका है, बच्चों के अधिकार क्या हैं, और उन्हें किस तरह कार्य करना है। धीरे–धीरे बदलाव शुरू हुआ।

रेलवे स्टेशन पर काम करते हुए हमने लगभग एक हजार बच्चों को उनके परिवारों से मिलाया। GRP, RPF और स्थानीय पुलिस को चाइल्ड प्रोटेक्शन पर प्रशिक्षण दिया। कई बार सिस्टम से टकराव भी हुआ, CWC के साथ मतभेद भी हुए, लेकिन मकसद साफ था - बच्चों की सुरक्षा।

समय बीतता गया। 2012 में हमें एक बड़ा प्रोजेक्ट मिला। अब झाँसी में दो प्रोजेक्ट चल रहे थे। चुनौतियाँ थीं, लेकिन संतोष भी था। झाँसी अब सिर्फ कार्यस्थल नहीं रहा था – वह मेरे जीवन का हिस्सा बन चुका था। फिर संस्था पर एक कठिन समय आया। कई प्रोजेक्ट एक साथ बंद हो गए। सर ने हमसे साफ कहा – "संभव है इस समय मानदेय न मिले, लेकिन काम रुकना नहीं चाहिए।"

हमने बिना हिचक यह स्वीकार किया। इसी बीच अचानक सितम्बर 2016 में आदेश मिला – झाँसी का सारा सामान हेड ऑफिस भेजकर मुझे लखनऊ जाना है। झाँसी छोड़ना मेरे लिए बहुत भावनात्मक था। वहाँ से मैं तीन घंटे में घर पहुँच जाता था। लेकिन लखनऊ, आगरा से लगभग 350 किलोमीटर दूर। ट्रेन की सुविधा भी सीमित थी।

अक्टूबर 2016 में मैंने लखनऊ में नई शुरुआत की। शुरुआत में हर रविवार रात बस से लखनऊ जाता और शुक्रवार रात वापस आगरा लौटता। होटल में रहकर काम करता। यह सिलसिला महीनों चला।

जो प्रोजेक्ट हमें मिला था, वह शुरुआत में सिर्फ तीन महीने के लिए था – मानव तस्करी पर केंद्रित। हमें राज्य स्तर पर एडवोकेसी करनी थी। प्रयागराज (पूर्व में इलाहाबाद), वाराणसी, भदोई और आजमगढ़ में काम कर रही संस्थाओं को जो समस्याएँ आ रही थीं, उन्हें सरकार के सामने प्रभावी ढंग से रखना हमारी जिम्मेदारी थी। लेकिन तीन महीने का प्रोजेक्ट धीरे–धीरे 2019 तक चलता रहा।

लखनऊ में मैंने कई ऐतिहासिक घटनाएँ देखीं– नोटबंदी, GST का लागू होना, और फिर कोरोना महामारी। नोटबंदी के समय मैं होटल में था। जेब में सिर्फ 500 और 1000 के नोट। एक पल को समझ नहीं आया क्या करूँ। उस समय सर ने पैसे भेजकर मदद की। कोरोना के दौरान पूरा देश ठहर गया था। लेकिन सर का फोन रोज सुबह–शाम आता था। "कैसे हो? खाना मिल रहा है? सुरक्षित हो?" वह अपनापन आज भी याद है।

लखनऊ में हमारा काम सिर्फ प्रोजेक्ट चलाना नहीं था – नेटवर्क बनाना था। अलग–अलग संस्थाओं के कार्यकर्ताओं से संवाद करना, उनकी समस्याएँ समझना, उन्हें कानूनी और प्रशासनिक भाषा में ढालकर अधिकारियों के सामने रखना। यह एक नई सीख थी। धीरे–धीरे चेतना का काम वहाँ एक मजबूत पहचान बना चुका था। उस रात जब गुरुग्राम जाने की बात हुई, पूरी रात यादों में बीत गई। अगली सुबह ऑफिस पहुँचा और टीम को बताया– "आज मेरा लखनऊ में आखिरी दिन है। अब मुझे गुरुग्राम जाना है।"

कमरे में सन्नाटा छा गया। कई आँखें नम थीं। मैंने कहा– "यह विदाई नहीं है, यह वृद्धि है। चेतना को एक और शहर में काम करने का अवसर मिला है, यह गर्व की बात है।"

जिस दिन मैं लखनऊ से रवाना हुआ, उस दिन तेज बारिश हो रही थी। ट्रेन की खिड़की से बाहर गिरती बूंदों को देखते हुए लगा जैसे शहर भी मुझे विदा कर रहा हो।

मैंने मन ही मन कहा– "धन्यवाद लखनऊ, तुमने मुझे मजबूत बनाया।" झाँसी ने मुझे संघर्ष सिखाया। लखनऊ ने मुझे नेतृत्व और धैर्य सिखाया। और अब गुरुग्राम मुझे एक नई चुनौती के साथ बुला रहा था। यह सिर्फ शहर बदलना नहीं था– यह एक विश्वास का बीज था, जो वृक्ष खड़ा करने का साहस रखता है।

मिले सुर मेरा तुम्हारा

मनीषा,
स्ट्रीट टू स्ट्रेंथ

क्या आपने कभी सोचा है कि अगर किसी बच्चे के पास अपनी बात कहने के लिए शब्द ही न हों, तो वह खुद को कैसे व्यक्त करेगा? अपने अंदर के डर, खुशियाँ और सपनों को वह दुनिया तक कैसे पहुँचाएगा? मेरे लिए इस सवाल का जवाब धीरे–धीरे सामने आया – और वह था संगीत। जब मैंने सड़क से जुड़े बच्चों के साथ एक म्यूजिक फैसिलिटेटर के रूप में काम शुरू किया, तो मुझे लगा था कि गाने बनाना और सिखाना एक आसान और स्वाभाविक प्रक्रिया होगी। मैंने सोचा था कुछ सुर, कुछ शब्द और थोड़ी–सी प्रैक्टिस और हम सब मिलकर गाने बना लेंगे। लेकिन असलियत इससे बिल्कुल अलग थी।

शुरुआती दिन काफी चुनौतीपूर्ण थे। जब मैं बच्चों के साथ बैठती, तो एक अजीब–सी खामोशी छा जाती। कुछ बच्चे चुप रहते–उनकी आँखों में कहानियाँ होतीं, लेकिन शब्दों में नहीं। कुछ इसे मजाक में टाल देते–शायद इसलिए क्योंकि वे सहज नहीं थे। और कुछ को समझ ही नहीं आता था कि अपनी भावनाओं को शब्दों और संगीत में कैसे बदला जाए। उनके लिए यह सब नया और थोड़ा उलझन भरा था।और सच कहूँ, तो मैं खुद भी उलझ जाती थी। बार–बार सोचती मैं इन तक कैसे पहुँचूँ? इन्हें सुरक्षित कैसे महसूस कराऊँ? इनका भरोसा कैसे जीतूँ? फिर एक दिन मैंने तय किया कि शायद मुझे अपना तरीका बदलना होगा।

मैंने सिखाना थोड़ा कम किया, और सुनना ज्यादा शुरू किया।

मैं उनके साथ बैठी, उनकी बातें सुनीं उनकी रोजमर्रा की जिंदगी, छोटे–छोटे पल, उनकी मुश्किलें, उनकी हँसी और उनके सपने। धीरे–धीरे मुझे एहसास हुआ कि उनके पास शब्द बहुत हैं, बस उन्हें कभी ध्यान से सुना नहीं गया था।

हमने वहीं से शुरुआत की।

उनकी बातों से छोटी–छोटी पंक्तियाँ बनाईं, फिर उन पंक्तियों को लय दी। कभी ताली के साथ, कभी मेज पर बीट बनाकर और कभी सिर्फ आवाजों से। धीरे–धीरे उनकी झिझक कम होने लगी। उन्होंने अपनी आवाज को पहचानना शुरू किया।

और फिर एक दिन बिना जाने हमने मिलकर अपना पहला गाना बना लिया। वह गाना परफेक्ट नहीं था। सुर कभी इधर–उधर हो जाते थे। शब्द बहुत सरल थे, लेकिन वह उनके थे। उनके शब्दो से बना हुआ, उनकी आवाजों से निकला हुआ गीत।

उस दिन मुझे एक गहरी बात समझ आई संगीत सिखाया नहीं जाता, संगीत मिलकर बनाया जाता है।

आज जब मैं उन बच्चों को देखती हूँ, तो उनमें एक नया आत्मविश्वास नजर आता है। जो बच्चे पहले हिचकिचाते थे, आज वही खुद से गाते हैं। नए सुर पकड़ने की कोशिश करते हैं, नए विचार लाते हैं, और अपनी भावनाओं को संगीत में पिरोने की कोशिश करते हैं।

अब उनके लिए संगीत सिर्फ एक गतिविधि नहीं रहा, यह उनकी आवाज बन चुका है।

और मैं? मैं अब सिर्फ एक फैसिलिटेटर नहीं रही। मैं उनकी यात्रा का एक हिस्सा बन गई हूँ– एक ऐसी यात्रा, जो सिर्फ संगीत तक सीमित नहीं बल्कि आत्म–अभिव्यक्ति, आत्मविश्वास और जुड़ाव की ओर जाती है।

यह सफर चुनौतियों से शुरू हुआ था, उलझनों से भरा हुआ था, लेकिन आज यह मेरे जीवन में एक बेहद खूबसूरत कहानी बन चुका है। मुझे खुशी होती है कि बच्चों के सहयोग से बने यह बाल अधिकारों और POCSO जैसे विषयों पर गीत आज यूट्यूब के माध्यम से बहुत से बच्चों तक पहुंच पा रहे हैं।

जहाँ जरूरत, वहाँ परशुराम

परशुराम,
ट्विंकलिंग स्टार्स, जयपुर

टीम में साथी अक्सर मुझे मजाक में "टीम का हनुमान" कहते हैं। मैं इसे किसी उपाधि की तरह नहीं लेता, बल्कि एक भरोसे की तरह देखता हूँ। शायद इसलिए कि जब भी कोई ऐसा काम सामने आता है जिसे तुरंत करना हो, जो थोड़ा कठिन हो या जिसमें धैर्य और निरंतरता की जरूरत हो, तो अक्सर मेरा नाम लिया जाता है।

मेरे लिए यह पहचान किसी विशेष भूमिका से नहीं, बल्कि जिम्मेदारी से जुड़ी है। जहाँ जरूरत हो, वहाँ पहुँचना ही मेरा काम है।

मुझे एक बस्ती का अनुभव कभी नहीं भूलता। उस बस्ती से नजदीकी सरकारी स्कूल लगभग 3 किलोमीटर दूर है। रास्ते में एक लंबा सुनसान हिस्सा पड़ता है। कुछ समय पहले बच्चों के बीच एक अफवाह फैल गई थी कि स्कूल जाते समय कोई उन्हें पकड़ ले जाएगा, और उस सुनसान जगह पर भूत रहता है। सुनने में यह बात छोटी लग सकती है, लेकिन बच्चों के मन में डर बहुत बड़ा हो गया था।

धीरे–धीरे बच्चों ने स्कूल जाना कम कर दिया और कुछ ने तो पूरी तरह ही बंद कर दिया। कोई दिन भर कचरा बीनने जाने लगा, कोई बकरियाँ चराने लगा और कोई परिवार की मजदूरी में हाथ बँटाने लगा। स्कूल दूर और डरावना दोनों लगने लगा।

जब यह बात सामने आई तो मैंने बच्चों के साथ बैठकर बातचीत शुरू की। पहले उनकी बात सुनी। उनके डर को गलत कहकर खारिज नहीं किया। मैंने उनसे पूछा कि उन्हें किस बात से सबसे ज्यादा डर लगता है। फिर कुछ दिनों तक उनके साथ उसी रास्ते पर चला। उन्हें दिखाया कि वहाँ कुछ भी असामान्य नहीं है। रास्ते के लोगों से परिचय कराया। एक–दो दिन अभिभावकों को भी साथ चलने के लिए तैयार किया।

पहले दिन बच्चे चुप थे। दूसरे दिन कुछ ने सवाल पूछे। तीसरे दिन कुछ हँसते हुए चले। धीरे–धीरे डर कम होने लगा। समूह में चलना शुरू हुआ। फिर दो बच्चे खुद आगे बढ़ने लगे। कुछ ही हफ्तों में वही रास्ता सामान्य लगने लगा।

बदलाव एक दिन में नहीं आया। कई बार फिर से समझाना पड़ा। कुछ दिन उपस्थिति फिर कम हुई। लेकिन लगातार संवाद, साथ चलना और भरोसा दिलाना काम करता गया। आज वही बच्चे नियमित रूप से स्कूल जा रहे हैं। जब सुबह उन्हें यूनिफॉर्म में उसी रास्ते पर चलते देखता हूँ तो लगता है कि मेहनत सफल हुई।

लेकिन मेरा काम केवल इतना नहीं है। फील्ड में हर दिन अलग होता है। कभी किसी केंद्र पर पढ़ाई की सामग्री समय पर पहुँचानी होती है। कभी खेल सामग्री की व्यवस्था करनी होती है ताकि बच्चे पढ़ाई के साथ खेल भी सकें। कभी वरिष्ठ साथियों द्वारा दिया गया पत्र तुरंत किसी विभाग या समुदाय तक पहुँचाना होता है। कभी अचानक किसी गतिविधि का आयोजन करना पड़ता है, जैसे खेलकूद, योग या विशेष सत्र।

कई बार दिन की योजना कुछ और होती है, लेकिन परिस्थिति कुछ और मांगती है। सुबह तय होता है कि एक केंद्र पर जाना है, और दोपहर तक सूचना मिलती है कि दूसरे समुदाय में तत्काल उपस्थिति की आवश्यकता है। ऐसी परिस्थितियों में समय, दूरी या सुविधा नहीं देखी जाती। केवल यह देखा जाता है कि बच्चों का काम रुके नहीं।

मैंने सीखा है कि फील्ड में लचीला होना जरूरी है। कई बार एक ही परिवार के पास बार–बार जाना पड़ता है। कई बार अभिभावक तुरंत सहमत नहीं होते। कई बार सामग्री समय पर पहुँचाने के लिए अतिरिक्त प्रयास करना पड़ता है। लेकिन जब किसी केंद्र पर बच्चे पूरे उत्साह से गतिविधि में शामिल होते हैं, या जब कोई बच्चा डर छोड़कर स्कूल जाने लगता है, तो सारी थकान कम हो जाती है।

साथी जब कहते हैं कि जहाँ काम अटक जाए, वहाँ मुझे याद किया जाता है, तो मैं इसे जिम्मेदारी की तरह लेता हूँ। मेरे लिए यह सम्मान से ज्यादा विश्वास है।

और विश्वास निभाने के लिए कभी–कभी रास्ते लंबे होते हैं, कभी दिन छोटे पड़ जाते हैं, लेकिन कदम रुकते नहीं।

मेरे लिए काम का अर्थ है जहाँ जरूरत हो, वहाँ उपस्थित रहना।

यदि किसी बच्चे की राह में डर है, तो उसे साथ चलकर दूर करना।

असल मूल्यांकन

समरीन,
खिलती कलियाँ, गुरुग्राम

मैंने जनवरी 2025 में चेतना को जॉइन किया। शुरुआत से ही जब मैंने चेतना का काम देखा और जिस प्रतिबद्धता के साथ टीम समुदाय व बच्चों के लिए कार्य कर रही थी, तो मेरे मन में एक ही विचार बार–बार आता था – क्या मैं इन प्रयासों को और बेहतर, और प्रभावशाली तरीके से प्रस्तुत कर पाऊँगी? उसे देखकर मेरे भीतर भी एक जिम्मेदारी और जुनून जागा कि मैं इस काम को पूरी ईमानदारी और मजबूती से आगे बढ़ाने में अपना योगदान दूँ। एम एंड ई (Monitoring & Evaluation Coordinator) की भूमिका मेरे लिए केवल एक पद नहीं, बल्कि संगठन के प्रभाव को सशक्त रूप से प्रस्तुत करने की जिम्मेदारी थी।

समय के साथ मैंने टीम के साथ मिलकर पूरे वर्ष के कार्यों को समझा, डेटा को व्यवस्थित किया, प्रक्रियाओं को मजबूत किया और हर छोटी–बड़ी जानकारी को सटीक रूप से दर्ज करना सीखा। लेकिन 12–13 दिसंबर 2025 की डोनर विजिट की खबर मिलते ही मेरे मन में एक अजीब सी बेचौनी शुरू हो गई। यह केवल एक विजिट नहीं थी – यह पूरे साल की मेहनत को बहुत कम समय में प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने की चुनौती थी।

विजिट से दो दिन पहले से ही तैयारियाँ शुरू हो गई थीं। हर फाइल, हर रजिस्टर, हर रिपोर्ट को दोबारा देखा गया। टीम के साथ लगातार बैठकों का सिलसिला चला। सीनियर मैनेजमेंट टीम ने हौसला बढ़ाते हुए कहा, "जैसे तुम रोज काम करती हो, वैसे ही आत्मविश्वास के साथ प्रस्तुत करना है।" इन शब्दों ने मेरे भीतर विश्वास भर दिया।

जब डोनर विजिट चल रही थी, तो बीच–बीच में वे हमारे काम की सराहना कर रहे थे। उन्होंने कहा कि उनके अन्य पार्टनर्स भी हैं, लेकिन

जिस प्रकार चेतना द्वारा डेटा को व्यवस्थित और स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया है, वैसा उन्हें कहीं और देखने को नहीं मिला। यह सुनकर मन गर्व से भर गया।

विजिट के दूसरे दिन हेड ऑफिस में जब मैं पीपीटी के माध्यम से प्रोजेक्ट डेटा प्रस्तुत कर रही थी, तभी हेल्थ कैंप के डेटा से जुड़ा एक छोटा सा क्षण आया जिसने हमें और सतर्क कर दिया। हेल्थ कैंप के आंकड़ों में कुछ नंबर गलत दिखाई दिए। डोनर ने तुरंत उस पर प्रश्न किया। वह पल थोड़ा तनावपूर्ण था, क्योंकि डेटा की सटीकता हमारी जिम्मेदारी थी। डेटा प्रेजेंटेशन के दौरान यह प्रश्न उभरा कि यदि हमारे पास इतना सशक्त और निरंतर एकत्रित किया गया डेटा है, तो हमें इसका वार्षिक विश्लेषण अवश्य करना चाहिए। मैनेजमेंट टीम ने शांत रहकर स्पष्ट किया कि डेटा किस प्रक्रिया से निकाला गया है। उसी समय हमने हेल्थ कैंप के रजिस्टर और रिकॉर्ड दोबारा मिलाए और पाया कि संख्या दर्ज करते समय एक छोटी त्रुटि रह गई थी। हमने तुरंत उसे सही किया और संशोधित डेटा प्रस्तुत किया।

उस दौरान डेटा को लेकर कई प्रश्न आए– कैसे कलेक्ट किया जाता है, कैसे वेरिफाई होता है, और किस तरह रिकॉर्ड किया जाता है। हमने हर प्रश्न का धैर्यपूर्वक उत्तर दिया। यह केवल गलती सुधारने का क्षण नहीं था, बल्कि यह दिखाने का अवसर था कि हमारी प्रक्रिया पारदर्शी है, और हम अपनी त्रुटियों को स्वीकार कर तुरंत सुधार करने की क्षमता रखते हैं। डोनर ने हमारी इस पारदर्शिता और तत्परता की सराहना की। उस पल मैंने महसूस किया कि सच्ची प्रोफेशनलिज्म केवल परफेक्ट डेटा दिखाने में नहीं, बल्कि ईमानदारी से उसे संभालने में है।

उस दिन मैंने सीखा कि टीमवर्क, पारदर्शिता और आत्मविश्वास ही किसी भी संगठन की सबसे बड़ी ताकत होते हैं। यह अनुभव मेरे लिए केवल एक प्रेजेंटेशन नहीं था – यह आत्मविश्वास, जिम्मेदारी और सीख से भरी एक भावनात्मक यात्रा थी, जिसने मुझे और मजबूत बना दिया।

लड़के नहीं रोते

डोली मिश्रा,
ट्विंकलिंग स्टार्स, जयपुर

दिसंबर 2022 से चेतना संस्था से जुड़ने के बाद मुझे विभिन्न विषयों पर प्रशिक्षण और सीखने के अवसर मिले। कानून, पेडागॉजी और बाल अधिकार जैसे विषयों ने कार्य की समझ को मजबूत किया। लेकिन हाल ही में जेंडर और मर्दानगी पर आयोजित एक क्रॉस लर्निंग कार्यक्रम मेरे लिए केवल एक प्रशिक्षण नहीं, बल्कि एक व्यक्तिगत और वैचारिक यात्रा बन गया। यह मेरे जीवन का पहला अवसर था जब मैं किसी कार्यक्रम के लिए घर से इतनी दूर गई। घर से दूर रहना, नए लोगों से मिलना, उनके साथ समय बिताना और लगातार संवाद में रहना मेरे लिए एक नया अनुभव था। उन दिनों में मैंने केवल सत्रों में भाग नहीं लिया, बल्कि खुद के साथ भी समय बिताया। अलग–अलग पृष्ठभूमि से आए प्रतिभागियों के अनुभव सुनना और उनके दृष्टिकोण को समझना– इस सीख का महत्वपूर्ण हिस्सा रहा। प्रशिक्षण से पहले जेंडर को लेकर मेरी समझ सीमित थी। मैं जेंडर को मुख्य रूप से महिला, पुरुष और ट्रांसजेंडर की पहचान तक ही देखती थी। "LGBTQ" शब्द सुना जरूर था, लेकिन उसकी व्यापकता और अर्थ की गहराई को नहीं समझती थी। समाज में इस विषय पर जो सामान्य धारणाएँ प्रचलित हैं, उन्हें कभी गंभीरता से परखा नहीं था।

क्रॉस लर्निंग के दौरान "LGBTQ अम्ब्रेला", जिसे "लेस्बियन, गे, बाइसेक्शुअल, ट्रांसजेंडर और क्वीयर" के नाम से जाना जाता है, उसकी अवधारणा को विस्तार से समझा। यह जाना कि जेंडर और सेक्स दो अलग आयाम हैं। सेक्स जैविक पहचान से जुड़ा है, जबकि जेंडर सामाजिक भूमिकाओं, अपेक्षाओं और अभिव्यक्ति से संबंधित है। "बाइनरी", "सीस मेल" और "जेंडर स्पेक्ट्रम" जैसे शब्दों ने सोच को एक नए

दृष्टिकोण से परिचित कराया। यह समझ आया कि पहचान को सीमित परिभाषाओं में नहीं बाँधा जा सकता।

जब इस सीख को समाज से जोड़ा, तो कई सामान्य लगने वाले वाक्य अब अलग अर्थ में दिखने लगे। "लड़के नहीं रोते" या "लड़कियाँ कमजोर होती हैं" जैसी बातें अब सहज नहीं लगतीं, बल्कि सामाजिक रूप से निर्मित धारणाएँ प्रतीत होती हैं। यह भी स्पष्ट हुआ कि जेंडर केवल महिला और पुरुष का अंतर नहीं है, बल्कि यह शक्ति संबंधों, अवसरों और सामाजिक संरचनाओं से भी जुड़ा है। चूँकि मैं बच्चों के साथ कार्य करती हूँ, इसलिए यह समझ मेरे लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। यदि मेरी सोच सीमित होगी, तो मैं बच्चों में समानता, सम्मान और संवेदनशीलता के मूल्य कैसे विकसित कर पाऊँगी? इस क्रॉस लर्निंग अनुभव ने मुझे यह महसूस कराया कि सीखना केवल जानकारी अर्जित करना नहीं, बल्कि स्वयं को बदलने और व्यापक बनाने की प्रक्रिया है।

घर से दूर बिताए वे दिन मेरे लिए आत्ममंथन का अवसर भी थे। नए लोगों के साथ रहकर यह समझ आया कि विविध अनुभव हमें अधिक संवेदनशील और जागरूक बनाते हैं। आज जेंडर के प्रति मेरी सोच पहले से अधिक व्यापक और समावेशी है।

अब मैं किसी भी पहचान को सही या गलत की श्रेणी में रखने के बजाय उसे समझने और सम्मान देने का प्रयास करती हूँ।यह क्रॉस लर्निंग अनुभव वास्तव में सीखने की एक नई दिशा था। एक ऐसी दिशा, जहाँ प्रश्न पूछना, धारणाओं को चुनौती देना और विविधता को स्वीकार करना सीख का हिस्सा बन जाता है।

काम भी, परिवार भी

मोनिका वर्मा,
ट्विंकलिंग स्टार्स, जयपुर

कार्यालय का समय भले ही सुबह 9:30 बजे से शुरू होता हो, लेकिन मेरे लिए दिन उससे पहले ही शुरू हो जाता है। एक माँ और पत्नी होने के नाते सुबह का समय केवल तैयारी का नहीं, जिम्मेदारी का समय होता है। बच्चों को उठाना, उनका टिफिन तैयार करना, स्कूल के लिए भेजना और घर की छोटी–बड़ी व्यवस्थाएँ देखना। इन सबके बीच मन कहीं और भी चलता रहता है।

इसी समय दिन की कार्ययोजना भी आकार ले रही होती है। किस समुदाय में आज विशेष फॉलोअप है? किस फील्ड सदस्य को अतिरिक्त मार्गदर्शन की आवश्यकता हो सकती है? किस बच्चे की अनियमितता पर आज फिर से चर्चा करनी होगी?

जब 9:30 बजे के आसपास टीम के संदेश आने लगते हैं कि वे अपने–अपने क्षेत्र में पहुँच गए हैं और दिन का एजेंडा साझा करते हैं, तब मेरे लिए वह केवल उपस्थिति दर्ज होना नहीं होता। यह उस भरोसे का संकेत होता है कि टीम अपने दायित्व पर है और मुझे उनके साथ रहना है। मैं हर एजेंडा पढ़ती हूँ। यह देखती हूँ कि गतिविधियाँ केवल दिन भर की सूची न होकर बच्चों के विकास से जुड़ी हों। यदि कहीं सुधार की आवश्यकता हो, तो तुरंत संवाद करती हूँ।

फील्ड का काम कभी पूर्व निर्धारित रेखाओं में नहीं चलता। एक दिन सब कुछ व्यवस्थित होता है, तो दूसरे दिन अचानक परिस्थिति बदल जाती है। कभी किसी सदस्य को आकस्मिक अवकाश लेना पड़ता है। कभी किसी बच्चे के परिवार में ऐसी स्थिति बन जाती है कि तुरंत हस्तक्षेप करना जरूरी हो जाता है। कभी किसी समुदाय में संवेदनशील माहौल बन जाता है।

मुझे एक दिन विशेष रूप से याद है। सुबह घर की जिम्मेदारियाँ पूरी

कर ही रही थी कि सूचना मिली कि एक केंद्र पर दो बच्चे लगातार अनुपस्थित हैं और परिवार उन्हें मजदूरी पर भेजने की सोच रहा है। उसी समय मेरे अपने बच्चे का स्कूल में एक कार्यक्रम भी था। उस क्षण मुझे लगा कि जिम्मेदारियाँ टकरा रही हैं। लेकिन जीवन ने मुझे सिखाया है कि संतुलन का अर्थ त्याग नहीं, प्राथमिकता तय करना है।

मैंने तुरंत टीम सदस्य से विस्तार से बात की। परिवार से संवाद की रणनीति तय की। शाम तक स्थिति स्पष्ट हुई और बच्चों की वापसी की संभावना बनी। उसी दिन मैंने यह और गहराई से महसूस किया कि एक माँ होने का अनुभव मुझे फील्ड में और संवेदनशील बनाता है। जब मैं किसी अभिभावक से बात करती हूँ, तो केवल परियोजना की प्रतिनिधि बनकर नहीं, बल्कि एक माँ की तरह भी सोचती हूँ।

फील्ड ने मुझे सिखाया है कि हर अनुपस्थिति के पीछे कहानी होती है। हर अभिभावक का विरोध जिद नहीं होता, कई बार वह डर या असुरक्षा होती है। इसलिए निर्देश देना आसान है, लेकिन समझना और साथ खड़ा रहना अधिक महत्वपूर्ण है।

मेरे लिए टीम की सुरक्षा भी प्राथमिकता है। जब तक यह सुनिश्चित न हो जाए कि सभी सदस्य सुरक्षित अपने घर पहुँच गए हैं, मन पूरी तरह शांत नहीं होता। कई बार रात में अंतिम कॉल के बाद ही सुकून आता है।

शाम 5:30 बजे के बाद दैनिक रिपोर्टें आनी शुरू होती हैं। घर में परिवार के साथ बैठी होती हूँ, लेकिन ध्यान रिपोर्ट पर भी रहता है। दिन भर की गतिविधियाँ, बच्चों की उपस्थिति, चुनौतियाँ और सीख सब पढ़ती हूँ। यदि कहीं स्पष्टता की आवश्यकता हो तो संवाद करती हूँ। कई बार अंतिम फीडबैक रात में जाता है।

घर और कार्य दोनों की जिम्मेदारियाँ अलग नहीं हैं। दोनों में धैर्य, समझ और निरंतरता की आवश्यकता होती है। जैसे अपने बच्चों के लिए सजग रहना जरूरी है, वैसे ही उन बच्चों के लिए भी जिनके साथ हमारी टीम काम कर रही है।

सुबह घर की रसोई से शुरू होकर रात के अंतिम संदेश तक चलता यह दिन कभी–कभी थका जरूर देता है, लेकिन भीतर गहरा संतोष भी भर देता है। क्योंकि मैं जानती हूँ कि जब संतुलन बना रहता है, तो जिम्मेदारियाँ बोझ नहीं लगतीं, बल्कि जीवन का उद्देश्य बन जाती हैं।

मेरे लिए दिन घड़ी के साथ नहीं, जिम्मेदारी के साथ शुरू होता है और विश्वास के साथ समाप्त होता है।

मैंने जिया चेतना का सफर

प्रज्ञा,
आफ्टरकेयर प्रोग्राम

साल 2007 की बात है। दिसंबर का महीना था। ठंडी हवा, धुंध से ढका कैंपस और सुबह–सुबह साइकिल खींचते हुए कॉलेज की ओर बढ़ना–यह रोज़ का हिस्सा था। जगह थी Pantnagar University। फाइनल ईयर चल रहा था और मन में सिर्फ एक सवाल घूम रहा थाकृतीन महीने की इंटर्नशिप कहाँ करूँगी? भविष्य किस दिशा में जाएगा, कुछ समझ नहीं आ रहा था।

उसी दौरान खबर मिली कि एक एनजीओ की मीटिंग है। डायरेक्टर Sanjay Gupta आने वाले हैं। संगठन का नाम था CHETNA। बताया गया कि यह सफ़र भी यहीं से शुरू हुआ था–कुछ छात्रों ने मिलकर खेतों में काम करने वाले मज़दूरों की झुग्गियों के पास रहने वाले बच्चों के लिए पढ़ाने का छोटा–सा प्रयास शुरू किया था। वही छोटा–सा बीज धीरे–धीरे एक आंदोलन बन गया। बातचीत शुरू हुई तो ऐसा लगा ही नहीं कि पहली बार मिल रहे हैं–अपनापन, सादगी और उद्देश्य, सब कुछ दिल को छू गया।

चार छात्रों ने वहीं तय किया–इंटर्नशिप CHETNA के साथ ही होगी, दिल्ली से।

और फिर ज़िंदगी ने सच में रफ्तार पकड़ ली।

किसी को फील्ड वर्क मिला, किसी को सृजन (एजुकेटर के लिए किताब), किसी को लिखने का काम, किसी को डॉक्यूमेंट्री, किसी को स्ट्रीट एजुकेटर्स के साथ झुग्गी–बस्तियों में काम करने का मौका। कहीं बच्चों के साथ नुक्कड़ नाटक, कहीं ऑडियो रिकॉर्डिंग, कहीं कम्युनिटी

मीटिंग्स।

फिर आया एक ऐसा अनुभव, जिसने ज़िंदगी का सबसे गर्व भरा पल दे दिया– Moradabad Police Training Academy में ट्रेनिंग का कार्यक्रम था। वहाँ बच्चों और कम्युनिटी से जुड़े सेशन्स में मैं ट्रेनर थी, और उसी ट्रेनिंग में मेरे पिता एक ट्रेनी थे। अचानक अकादमी के अधिकारियों ने उन्हें स्टेज पर बुलाया। पूरी अकादमी के सामने उनका सम्मान किया गया। तालियों की गूंज, पूरा हॉल खड़ा था।

वो पल, ज़िंदगी का सबसे गर्व भरा पल था।

उस दिन उन्होंने बस इतना कहा–

"आज समझ आया कि मेरी बेटी सच में बहुत अच्छा काम कर रही है।"

उस एक वाक्य ने सारी थकान, सारी मुश्किलें, सारी अनिश्चितताएँ ख़त्म कर दीं।

कई बार लगा कि शायद यह रास्ता बहुत कठिन है। शायद कोई और फील्ड आसान होता।

लेकिन बच्चों की आँखों में उम्मीद देखकर हर बार दिल कहता–यही सही रास्ता है।

फिर 2008 आया।

कुछ दोस्तों के साथ, Sanjay Sir के मार्गदर्शन में, CHETNA Student Wing को Pantnagar University में दोबारा ज़िंदा किया गया।

छोटा सा समूह था, लेकिन सोच बड़ी थी।

हर साल नए छात्र जुड़ते गए। आसपास की कम्युनिटीज़ के बच्चों के साथ एक्टिविटीज़, मेडिकल कैंप, एजुकेशनल सपोर्ट, वेलफेयर प्रोग्राम– छोटे कदम, बड़े बदलाव।

CHETNA Student Wing सिर्फ एक यूनिट नहीं रही, वो एक भावना बन गई।

मास्टर्स, एंट्रेंस एग्ज़ाम, फूड्स एंड न्यूट्रिशन, ह्यूमन डेवलपमेंट–रास्ते बदले, शहर बदले, लेकिन रिश्ता नहीं बदला।

CHETNA हर दौर में साथ रही–कभी सीधे काम में, कभी यादों में, कभी प्रेरणा में।

डिग्रियाँ पूरी हुईं, करियर के कई मोड़ आए, कुछ दूरियाँ बनीं, फिर भी रास्ता बार–बार CHETNA तक लौट आता रहा। पिछले तीन सालों से फिर से उसी परिवार का हिस्सा बनकर काम करने का मौका मिला–और हर दिन यही एहसास होता है कि यही पहचान है, यही रास्ता है, यही बुलावा था।

भोली देवी की कहानी

निन्शा परेवा,
ट्विंकलिंग स्टार्स, जयपुर

समुदाय में काम करते हुए मैंने अक्सर देखा है कि बच्चों की पढ़ाई रुक जाती है, लेकिन कारण हमेशा आर्थिक नहीं होता। कई बार जानकारी की कमी, प्रक्रिया का डर, या बार–बार की टालमटोल बच्चों को स्कूल से दूर कर देती है। धीरे–धीरे यह दूरी सामान्य लगने लगती है, और फिर एक दिन बच्चे यह मान लेते हैं कि शायद स्कूल उनके लिए बना ही नहीं है।

मैंने अभिभावकों के साथ बैठकर बच्चों के अधिकारों और शिक्षा के महत्व पर बातचीत शुरू की। शुरुआत में लोग सुनते थे, लेकिन विश्वास कम था। कुछ माता–पिता कहते थे कि वे कई बार स्कूल गए, पर हर बार कोई नया कारण बताकर लौटा दिया गया। कभी कहा गया कि जन्म प्रमाण पत्र अधूरा है, कभी आयु अधिक हो गई है, कभी सीट नहीं है। बच्चे साल दर साल बड़े हो रहे थे, लेकिन दाखिला केवल आश्वासन में अटका था।

इसी समुदाय में भोली देवी (परिवर्तित नाम) रहती थीं। उनके दो बच्चे कई वर्षों से स्कूल में प्रवेश की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे पहले भी कोशिश कर चुकी थीं। हर बार कुछ कागजों की कमी बता दी जाती या कहा जाता कि बाद में आना। धीरे–धीरे उन्होंने भी मान लिया था कि शायद यह उनके बस की बात नहीं है। बच्चों की उम्र बढ़ रही थी, और उनके मन में भी यह सवाल आने लगा था कि क्या वे कभी स्कूल जा पाएँगे।

मैंने उनसे कई बार बैठकर बात की। उन्हें समझाया कि शिक्षा किसी सहारे का इंतजार नहीं, बच्चों का अधिकार है। यदि दस्तावेज अधूरे हैं तो उन्हें पूरा करने में मदद मिल सकती है, लेकिन केवल बहानों को स्वीकार कर लेना समाधान नहीं है। मैंने उनसे पूछा कि क्या वे एक बार फिर कोशिश करने को तैयार हैं? शुरुआत में वे हिचकिचाईं, लेकिन बातचीत के दौरान उनके भीतर दबा हुआ साहस धीरे–धीरे जागने लगा।

एक दिन उन्होंने दृढ़ होकर कहा, अब और नहीं।

उस दिन वे अपने दोनों बच्चों को साथ लेकर स्कूल पहुँचीं। पहले की तरह चुपचाप लौट आने के बजाय वे सीधे स्कूल प्रबंधन से मिलीं। उन्होंने

स्पष्ट शब्दों में कहा कि उनके बच्चों की उम्र बढ़ती जा रही है और बढ़ती देरी से उनका भविष्य प्रभावित हो रहा है। उन्होंने बच्चों के अधिकार की बात रखी। उन्होंने यह भी कहा कि यदि दस्तावेजों में कमी है तो स्पष्ट सूची दी जाए, लेकिन बिना कारण उन्हें वापस न भेजा जाए। उन्होंने साफ कहा कि वे बिना ठोस निर्णय के वापस नहीं जाएँगी।

बातचीत आसान नहीं थी। स्वर कभी औपचारिक रहा, कभी थोड़ा तीखा भी। दस्तावेजों की जाँच हुई। रजिस्टर देखे गए। कुछ प्रश्न उठे। लेकिन इस बार फर्क यह था कि भोली देवी पीछे नहीं हटीं। उनके शब्दों में संकोच नहीं, आत्मविश्वास था। वह किसी से लड़ने नहीं गई थीं, बल्कि अपने बच्चों के अधिकार की बात रखने गई थीं।

अंततः प्रवेश की प्रक्रिया पूरी की गई। जब उनके बच्चों का नाम रजिस्टर में दर्ज हुआ, तो वह केवल एक प्रशासनिक प्रक्रिया नहीं थी। वह प्रतीक्षा के वर्षों का अंत था। वह उस साहस का परिणाम था, जिसने हार मानने से इनकार कर दिया।

जब वे घर लौटीं, तो उनके चेहरे पर संतोष था। बच्चों की आँखों में चमक थी। यह केवल दाखिला नहीं था, बल्कि आत्मसम्मान की पुर्नस्थापना थी।

इस घटना का प्रभाव केवल एक परिवार तक सीमित नहीं रहा। समुदाय के अन्य अभिभावकों ने भी देखा कि यदि हम अपने बच्चों के अधिकार के लिए खड़े हों, तो रास्ता बन सकता है। धीरे–धीरे और माता–पिता आगे आए। दस्तावेज जुटाए गए। स्कूल जाने की हिचक कम हुई। संवाद बढ़ा। जागरूकता मजबूत हुई।

मेरे लिए यह अनुभव बहुत महत्वपूर्ण रहा। इससे यह समझ और गहरी हुई कि जागरूकता केवल जानकारी देने से नहीं आती। असली बदलाव तब आता है जब किसी के भीतर आत्मविश्वास जागता है। जब कोई अभिभावक यह महसूस करता है कि वह अपने बच्चे के भविष्य के लिए आवाज उठा सकता है।

कई बार परिवर्तन किसी बड़ी योजना से नहीं आता। वह एक साधारण से दिखने वाले निर्णय से आता है। एक माँ के उस संकल्प से आता है, जब वह कहती है कि अब उसके बच्चे की पढ़ाई टाले जाने की चीज नहीं है।

कई बदलाव चुपचाप शुरू होते हैं। और कई बार वे एक वाक्य से जन्म लेते हैं।

अब और नहीं।

विश्वास की नींव

इंदु,
स्ट्रीट टू स्किल, दिल्ली

अगस्त का महीना था। जिस्म को झुलसा देने वाली कड़ाके की धूप पड़ रही थी। तेज गर्मी से सबका बुरा हाल था और चारों तरफ धूल भरा वातावरण था। मेट्रो निर्माण का कार्य चल रहा था चारों तरफ गड्ढे खुदे हुए थे। निजामुद्दीन की गलियों में जब मैंने पहली बार बच्चों से बातचीत की, तो वे मुझे संकोच और जिज्ञासा भरी नजरों से देख रहे थे। कुछ मस्ती में खेल रहे थे और कुछ बच्चे फोन चला रहे थे। कुछ बच्चे खुदाई का काम चल रहे स्थान पर खड़े होकर खुदाई करते हुए मशीनों को देख रहे थे। वे वातावरण में इस तरह घुल–मिल गए थे जैसे वह उनका अपना घर हो। सड़क पर रहने के बावजूद भी उन्हें घर की कमी महसूस नहीं होती थी।

कुछ बच्चों के तन पर कपड़े थे और कुछ बच्चे बिना कपड़ों के ही पेड़ों के नीचे मस्ती से खेल रहे थे। उन्हें किसी बात की कोई फिक्र नहीं थी, न ही कल की कोई चिंता।

शुरुआत में वे मेरे लिए नए थे और मैं उनके लिए। हम एक–दूसरे को नहीं जानते थे। पर जैसा कि कहा जाता है, बच्चे बहुत ही मासूम होते हैं– वे अपना–पराया नहीं जानते। वे एक–दो ही दिनों में मेरे साथ घुल–मिल गए। मैंने खेल, चित्रकारी और छोटी–छोटी गतिविधियों के माध्यम से उनसे जुड़ना शुरू किया। धीरे–धीरे बच्चों ने अपने सपनों और परेशानियों को साझा करना शुरू किया।

बच्चों से एक महीने की जान–पहचान हो चुकी थी। बच्चों से जुड़ना जितना आसान था, उनके परिवार के सदस्यों से जुड़ना उतना ही मुश्किल। समुदाय में अपनी पहचान बनाने के लिए प्रतिदिन उनसे मिलना मैंने अपने काम का जरूरी हिस्सा बना लिया। बच्चों से संबंधित बातचीत

करने लगी। धीरे–धीरे मुलाकात और बातचीत से विश्वास की नींव डालनी शुरू तो हो चुकी थी, पर अभी भी पूरी तरह से उनका विश्वास जीतना बाकी था।

दो महीने बाद संस्था की ओर से संदेश आया कि आयोजित रेजिडेंशनल वर्कशॉप में 6 बच्चों को लेकर जयपुर जाना है। यह बच्चों के लिए सीखने, समझने और अपने अधिकारों को जानने का सुनहरा अवसर था। मैं भी चाहती थी कि बच्चे नई जगह पर जाएँ और कुछ नया सीखें। बच्चे भी रेजिडेंशनल वर्कशॉप में जाने के लिए उत्साहित थे।

लेकिन असली चुनौती थी–माता–पिता का विश्वास जीतना।

मैंने घर–घर जाकर अभिभावकों से मुलाकात की। उन्हें संस्था के काम के बारे में बताया और समझाया कि हमारा उद्देश्य बच्चों को सुरक्षित माहौल, शिक्षा और आत्मविश्वास देना है।

शुरुआत में कई माता–पिता संदेह में थे–"बच्चे बाहर जाएंगे तो उनकी सुरक्षा कैसी रहेगी?" "काम छूट गया तो घर का खर्च कैसे चलेगा?"

मैंने धैर्यपूर्वक उनकी हर शंका का जवाब दिया। पिछले कार्यक्रमों की जानकारी दी और भरोसा दिलाया कि बच्चों की पूरी जिम्मेदारी संस्था की होगी।

उस समय मेरे सामने दो बड़ी जिम्मेदारियाँ थीं– बच्चों को इस अवसर के लिए तैयार करना और माता–पिता का पूरा विश्वास जीतना।

धीरे–धीरे माहौल बदला।

कुछ माता–पिता ने कहा– "अगर आप साथ जा रही हैं तो हमें भरोसा है।" उन शब्दों ने मुझे एहसास दिलाया कि एक महीने की मेहनत रंग ला रही है।

वर्कशॉप के दिन बच्चों के चेहरों पर उत्साह साफ दिख रहा था। वे पहली बार अपने क्षेत्र से बाहर किसी सीखने वाले कार्यक्रम में जा रहे थे। वहाँ उन्होंने खेल–खेल में नेतृत्व, टीमवर्क, आत्मविश्वास और अपने अधिकारों के बारे में सीखा।

पाँच दिन बाद जब हम वापस लौटे, तो बच्चों में एक नया आत्मविश्वास था। वे अपने अनुभव घर पर उत्साह से साझा कर रहे थे। माता–पिता ने भी बदलाव महसूस किया–बच्चे अधिक जिम्मेदार और आत्मविश्वासी हो गए थे।

विश्वास की सबसे बड़ी जीत हुई थी।

इस पूरे अनुभव ने मुझे यह सिखाया कि समुदाय में काम करने के लिए सबसे जरूरी चीज है–विश्वास। विश्वास एक दिन में नहीं बनता, बल्कि निरंतर संवाद, पारदर्शिता और जिम्मेदारी से बनता है।

आज जब मैं उन्हीं गलियों से गुजरती हूँ, तो माता–पिता मुस्कुराकर कहते हैं– "दीदी, अगली बार भी हमारे बच्चे को जरूर ले जाना।" यह मेरे लिए सिर्फ एक कार्यक्रम नहीं था, बल्कि विश्वास की एक मजबूत डोर थी, जिसने मुझे और समुदाय को एक साथ जोड़ दिया।

दो दोस्त, एक सपना

शानू कनौजिया,
नन्हे परिंदे, लखनऊ

लखनऊ के चारबाग रेलवे स्टेशन के पास की झोपड़ी बस्ती में दो पक्के दोस्त रहते थे। रवि और अली (परिवर्तित नाम)। दोनों की उम्र लगभग 12 साल थी।

सुबह होते ही वे अपने–अपने घर से बोरी उठाते और कूड़ा बीनने निकल जाते। प्लास्टिक, बोतलें, कबाड़– यही उनकी रोजी थी। धूप हो या बारिश, काम रुकता नहीं था।

लेकिन दोनों का एक ही सपना था– "काश हम भी स्कूल जाते,"

एक दिन बस्ती में एक छोटी सी पढ़ाई की कक्षा शुरू हुई। कुछ शिक्षक आए और उन्होंने बच्चों को बैठाकर पढ़ाना शुरू किया। पहले तो रवि और अली हँस रहे थे, "हमसे नहीं होगा ये सब," लेकिन जब उन्होंने देखा कि उनके जैसे ही बच्चे 'क' से 'कबूतर' और '1 से 10' गिनती सीख रहे हैं, तो उनके मन में भी हिम्मत आई। अगले दिन वे भी चुपचाप जाकर बैठ गए। शुरुआत आसान नहीं थी। रवि को लिखना कठिन लगता था, और अली को हिंदी समझने में दिक्कत होती थी। लेकिन दोनों ने तय किया ।

"अगर हम कूड़ा ढूंढ सकते हैं, तो अक्षर भी ढूंढ लेंगे।"

धीरे–धीरे वे पढ़ने लगे। वे एक–दूसरे की मदद करते। जो शब्द सोनू समझता, वह इमरान को समझाता। जो सवाल अली हल करता, वह रवि को सिखाता।

कुछ महीनों बाद चेतना संस्था द्वारा उनका पास के सरकारी स्कूल में दाखिला हो गया।

पहले दिन जब उन्होंने स्कूल यूनिफॉर्म पहनी, तो दोनों आईने में खुद को देखकर मुस्कुराए।

रवि बोला, "एक दिन हम बड़े आदमी बनेंगे।"

अली ने कहा, "हाँ, और अपनी बस्ती के बच्चों को भी पढ़ाएंगे।"

आज भी उनकी झोपड़ी वही है, लेकिन अब वहाँ रात को मोबाइल की रोशनी में नहीं, बल्कि एक छोटी सी स्टडी लाइट में पढ़ाई होती है।

दो दोस्तों ने मिलकर साबित कर दिया– सपने अकेले नहीं, साथ मिलकर पूरे होते हैं।

जब डर बना सीख

ममता,
खिलती कलियां, गुरुग्राम

एक दिन अचानक मेरे सीनियर का फोन आया। उन्होंने बताया कि बच्चों को पुलिस स्टेशन शैक्षणिक विजिट के लिए लेकर जाना है। यह सुनते ही मुझे हल्की घबराहट महसूस हुई। मैं स्वयं कभी पुलिस स्टेशन नहीं गई थी। जिस सामाजिक परिवेश से मैं आती हूँ, वहाँ किसी महिला का थाने जाना अच्छा नहीं माना जाता। ऐसे में बच्चों को लेकर जाना मेरे लिए एक नई और चुनौतीपूर्ण जिम्मेदारी थी।

फिर भी मैंने हिम्मत जुटाई और सबसे पहले बच्चों के अभिभावकों से बातचीत शुरू की। जब मैंने उन्हें पुलिस स्टेशन विजिट के बारे में बताया, तो उन्होंने तुरंत मना कर दिया। उनका कहना था, "मैडम, आजकल बच्चों के चोरी होने की घटनाएँ बहुत सुनने में आ रही हैं। हम अपने बच्चों को लेकर कोई जोखिम नहीं लेना चाहते।"

उनकी बात सुनकर एक पल के लिए लगा कि शायद यह योजना सफल नहीं हो पाएगी। मेरी उम्मीदें मानो टूटने लगीं। लेकिन मैंने धैर्य और सकारात्मक दृष्टिकोण के साथ उन्हें समझाने का प्रयास जारी रखा। मैंने उन्हें बताया कि यह विजिट बच्चों के लिए सीखने का अवसर है– वे पुलिस की भूमिका, कानून और अपनी सुरक्षा के बारे में जान सकेंगे। धीरे–धीरे अभिभावकों को मेरी बात समझ आने लगी। फिर भी उनके मन में संदेह बना रहा। उन्होंने मुझसे मेरे पहचान–पत्र और दस्तावेज देखने को कहा। मैंने बिना किसी हिचकिचाहट के अपने दस्तावेज दिखाए और उन्हें विश्वास दिलाया कि उनके बच्चे सुरक्षित रहेंगे और समय पर घर पहुँचा दिए जाएँगे। अंततः अभिभावक तैयार हो गए, हालांकि उनके मन में चिंता अभी भी बनी हुई थी।

जब हम पुलिस स्टेशन पहुँचे, तब भी अभिभावकों के लगातार फोन

आते रहे। वे बार–बार बच्चों की कुशलक्षेम के बारे में पूछ रहे थे। उसी दौरान एक पुलिस अधिकारी ने मुझसे पूछा कि बार–बार फोन क्यों आ रहे हैं। मैंने धीमी आवाज में स्थिति बताई कि अभिभावक वर्तमान परिस्थितियों के कारण चिंतित हैं और बच्चों की सुरक्षा को लेकर आशंकित हैं।

तब एक पुलिस अधिकारी ने स्वयं एक अभिभावक से फोन पर बात की। उन्होंने बड़े धैर्य और संवेदनशीलता के साथ समझाया, "आप निश्चिंत रहिए। यहाँ आपके बच्चों को पुलिस की कार्यप्रणाली, सुरक्षा के नियम और अपने अधिकारों की जानकारी दी जाएगी। वे पूरी तरह सुरक्षित हैं और मैडम उन्हें सुरक्षित घर पहुँचाएँगी।" इस बातचीत के बाद अभिभावकों का विश्वास मजबूत हुआ। जिन्होंने पहले फोन किया था, उन्होंने अन्य अभिभावकों को भी आश्वस्त किया कि बच्चे सुरक्षित हैं और समय पर घर लौट आएँगे।

पुलिस स्टेशन में बच्चों ने भी पुलिस अधिकारियों से कई सवाल पूछे। उन्होंने पुलिस की जिम्मेदारियों, सुरक्षा उपायों और आपातकालीन स्थितियों में क्या करना चाहिए–इन सब विषयों पर जानकारी प्राप्त की। यह अनुभव बच्चों के लिए अत्यंत ज्ञानवर्धक और आत्मविश्वास बढ़ाने वाला साबित हुआ। इस पूरी घटना ने मुझे सिखाया कि साहस, धैर्य और विश्वास के साथ संवाद किया जाए, तो हर डर को दूर किया जा सकता है। यह अनुभव मेरे लिए न केवल पेशेवर रूप से, बल्कि व्यक्तिगत रूप से भी अत्यंत प्रेरणादायक रहा।

सपनों की यात्रा

रजनी,
खिलती कलियां, गुरुग्राम

सर्दियों की शुरुआत थी। दोपहर के भोजन के पश्चात हम बच्चों के साथ बैठकर उनके अधिकारों से संबंधित जानकारी साझा कर रहे थे। प्रश्न–उत्तर सत्र के दौरान यह अनुभव हुआ कि बच्चों के उत्तर स्पष्ट और संतोषजनक नहीं थे। इससे हमें लगा कि या तो हमारी समझाने की पद्धति पर्याप्त प्रभावी नहीं रही या विषय बच्चों की समझ में पूरी तरह नहीं आ पाया।

इसी दौरान समूह में एक संदेश प्राप्त हुआ, जिसमें प्रत्येक केंद्र से रेजिडेंशियल कार्यशाला हेतु बच्चों की सूची तैयार करने के निर्देश दिए गए थे। संदेश पढ़ने के बाद हमने बच्चों के साथ कार्यशाला के विषय में चर्चा की। जब उन्हें बताया गया कि कार्यशाला चार से पाँच दिनों की होगी, तो कोई भी बच्चा जाने के लिए तैयार नहीं हुआ। संभवतः वे पहली बार परिवार से दूर रहने को लेकर संकोच और असमंजस में थे। हमने उन्हें आश्वस्त किया कि अभिभावकों की अनुमति के बिना किसी को नहीं भेजा जाएगा, फिर भी उनकी झिझक बनी रही।

अगले दिन हमने अपने वरिष्ठ परियोजना समन्वयक से परामर्श लिया। उन्होंने बच्चों और अभिभावकों से संवाद की उचित प्रक्रिया समझाई तथा अभिभावकों को संपर्क नंबर उपलब्ध कराने की सलाह दी, ताकि उनमें विश्वास और सुरक्षा की भावना बनी रहे।

विचार–विमर्श के पश्चात 8–10 अभिभावकों को केंद्र पर आमंत्रित किया गया। बैठक में कार्यशाला का उद्देश्य, कार्यक्रम की रूपरेखा, सुरक्षा व्यवस्था तथा बच्चों को होने वाले लाभों की विस्तृत जानकारी दी गई। प्रारंभ में केवल दो अभिभावक ही सहमत हुए, किंतु उनके सकारात्मक निर्णय से अन्य अभिभावकों का विश्वास भी बढ़ा और अंततः छह बच्चों के नाम कार्यशाला के लिए तय हुए।

कार्यशाला हेतु बच्चों को जूते और जैकेट प्रदान किए गए। यह उनके

लिए अत्यंत खुशी का अवसर था। प्रस्थान से एक दिन पूर्व बच्चों की आवश्यक तैयारियाँ और सामान की पैकिंग कराई गई। बच्चे अत्यंत उत्साहित थे और उनकी प्रसन्नता देखकर हमें भी संतोष और प्रेरणा मिली।

निर्धारित दिन सभी बच्चे समय पर तैयार मिले। वे अपने बैग के साथ बस में बैठे, मानो किसी नए अनुभव और सीख की ओर अग्रसर हों। बस में अन्य केंद्रों के बच्चे और टीम सदस्य भी उपस्थित थे। सभी ने आपस में परिचय किया। यात्रा के दौरान नाश्ता वितरित किया गया और बच्चों ने गीत–संगीत के साथ आनंदपूर्ण समय व्यतीत किया।

जयपुर पहुँचने पर कार्यशाला के नियम एवं कार्यक्रम की जानकारी दी गई।

पहले दिन कार्यशाला के नियम और अनुशासन की जानकारी दी गई।

दूसरे दिन बच्चों ने अपने अधिकारों के विषय में विस्तार से सीखा।

तीसरे दिन नेतृत्व कौशल से संबंधित गतिविधियाँ आयोजित की गईं।

चौथे दिन बाल अधिकारों और संबंधित कानूनों की जानकारी प्रदान की गई।

अंतिम दिन समूह गतिविधियाँ आयोजित की गईं, जिनमें बच्चों ने चित्रकला, गीत और प्रस्तुतियों के माध्यम से अपनी सीख को अभिव्यक्त किया।

जो बच्चे प्रारंभ में संकोची थे, वे भी मंच पर आत्मविश्वास के साथ अपने विचार रखते हुए दिखाई दिए। यह सकारात्मक परिवर्तन अत्यंत प्रेरणादायक और संतोषप्रद था।

पाँचवें दिन वापसी हुई। बच्चे और अधिक समय रुकना चाहते थे, परंतु निर्धारित अवधि पूर्ण हो चुकी थी। हँसी–खुशी यात्रा करते हुए सभी गुरुग्राम पहुँचे और बच्चों को सुरक्षित उनके घरों तक पहुँचाया गया।

इसके पश्चात हमें दो और बार कार्यशाला में भाग लेने का अवसर मिला। अब अभिभावकों और समुदाय के साथ विश्वास का संबंध और भी सुदृढ़ हो चुका है। बच्चे स्वयं उत्साहपूर्वक भाग लेने की इच्छा व्यक्त करते हैं।

अक्टूबर 2025 की कार्यशाला में मुझे प्रशिक्षक (ट्रेनर) के रूप में कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। यह मेरे लिए अत्यंत गौरवपूर्ण और जिम्मेदारी से भरा अनुभव था। वरिष्ठों के मार्गदर्शन में मैंने अपनी भूमिका निष्ठा और समर्पण के साथ निभाई।

भविष्य में भी ऐसे अवसर प्राप्त हों, यही मेरी आकांक्षा है। मैं सदैव पूर्ण, समर्पण और प्रतिबद्धता के साथ अपने कार्य के प्रति तत्पर रहूँगी।

सर्दियों की वह भयानक शाम

असमा,
स्ट्रीट टू स्किल, दिल्ली

सर्दियों के मौसम की एक ठंडी, धुँधली शाम थी। सेंटर पर रोज की तरह बच्चों की हलचल थी। तभी अचानक कुछ बच्चे हाँफते हुए भागते–भागते अंदर आए।

"दीदी, दीदी, पार्क में एक बच्चा खेलते–खेलते ट्रांसफॉर्मर से जल गया है!"

यह सुनते ही जैसे मेरे पैरों तले जमीन खिसक गई। एक पल के लिए समझ ही नहीं आया कि बच्चे क्या कह रहे हैं। दिल जोर–जोर से धड़कने लगा। बिना एक पल गंवाए मैं अपनी टीम मेंबर के साथ उस पार्क की ओर दौड़ पड़ी।

वहाँ पहुँचकर जो देखा, वह दिल दहला देने वाला था। एक छोटा सा बच्चा ट्रांसफॉर्मर के पास जमीन पर गिरा हुआ था। आसपास भीड़ जमा थी, लोग खड़े होकर देख रहे थे, लेकिन कोई भी उसे छूने की हिम्मत नहीं कर पा रहा था। शायद डर था, शायद लापरवाही, पर वह मासूम दर्द से तड़प रहा था।

हमने लोगों से मदद की गुहार लगाई। तब कुछ लोग दीवार फाँदकर ट्रांसफॉर्मर के पास पहुँचे और बच्चे को बाहर निकाला। इसी बीच हमारे सेंटर के बच्चे दौड़ते हुए आए–

"दीदी, ये हमारे समुदाय का बच्चा है, हम इसके घर खबर देने जा रहे हैं।"

वह लगभग आठ साल का मासूम था। उसका शरीर बुरी तरह जला हुआ था। वह चीख रहा था, रो रहा था, उसकी आवाज आज भी मेरे कानों में गूंजती है।

मैंने तुरंत सड़क पर आती एक गाड़ी रोकी, पर वह नहीं रुकी। फिर

एक रिक्शा वाले को रोका। उसने इंसानियत दिखाई। हम बच्चे को सावधानी से रिक्शा में बैठाकर अस्पताल की ओर भागे। रास्ते में उसके घर खबर भिजवाई।

"आप तुरंत देश बंधु गुप्ता अस्पताल पहुँचिए, हम बच्चे को वहीं लेकर जा रहे हैं।"

उस समय मेरे मन में बस एक ही बात थी। यह बच्चा हमारे संस्थान से जुड़ा हो या नहीं, पर यह एक मासूम जिंदगी है, और इसे बचाना हमारा फर्ज है।

अस्पताल पहुँचकर डॉक्टरों को पूरा हाल बताया। डॉक्टर ने कहा कि पुलिस को बुलाना होगा। हमने तुरंत हामी भरी। थोड़ी ही देर में पुलिस अधिकारी आ गए। उन्होंने पूछा हम कौन हैं। हमने अपनी संस्था चेतना का परिचय दिया और बताया कि हम बच्चे को लेकर आए हैं।

जाँच के बाद डॉक्टर ने कहा– "इस बच्चे का इलाज यहाँ संभव नहीं है। इसे तुरंत लोक नायक जय प्रकाश नारायण अस्पताल ले जाना होगा।"

इतने में उसकी माँ भी रोती–बिलखती पहुँच गईं। उनकी गोद में सिर्फ 15 दिन की एक नन्ही बच्ची थी। साथ में उसका बड़ा भाई और मौसी भी थे। माँ की हालत देख कर दिल टूट गया। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा–"मैडम जी, हम किसी को नहीं जानते, आप हमारे साथ रहिए, हमारे बच्चे को भर्ती करवा दीजिए।"

हमने उन्हें भरोसा दिलाया।

"हम आपके साथ हैं।"

एलएनजेपी अस्पताल, भीड़, लंबी लाइनें, इंतजार, पर संस्था के सहयोग और पुलिस की मदद से लगभग एक घंटे बाद बच्चे को बर्न विभाग में भर्ती किया गया। उसे स्ट्रेचर पर ले जाया गया। उसका बड़ा भाई रोजे से था, फिर भी बिना थके उसके साथ चल रहा था। हमारी संस्था ने उनके रोजा खोलने का भी इंतजाम किया। डॉक्टर ने जाँच के बाद बताया–"करंट लगने की वजह से इसके शरीर का बायाँ हिस्सा बुरी तरह जल गया है। हाथ काटना पड़ेगा।"

यह सुनकर परिवार टूट गया। कुछ लोग आपस में दोष देने लगे।

"अगर इसकी भाभी ने इसे मारा न होता तो यह पार्क में छुपने नहीं जाता।"

हमने सबको समझाया– "यह दोष देने का समय नहीं, हिम्मत रखने

का समय है।"

रात के एक बज चुके थे। बच्चा भर्ती हो गया था। हम सब भारी दिल से घर लौटे। लेकिन घर आकर भी नींद कहाँ थी? उसकी चीखें, उसका रोना, उसका "दर्द हो रहा है" कहना, सब कुछ आँखों के सामने घूम रहा था। वह रात आँसुओं में कट गई।

अगली सुबह मैं और हमारी प्रोजेक्ट हेड फिर अस्पताल पहुँचे। डॉक्टर ने कहा।

"आज ऑपरेशन होगा, हाथ हटाना पड़ेगा।"

ऑपरेशन हुआ। लेकिन कुछ दिन बाद डॉक्टर ने बताया कि जख्म में सड़न बढ़ गई है, अब पूरा हाथ कंधे से हटाना पड़ेगा।

जब भी हम उसे देखने जाते, वह मासूम हमें देखकर बस इतना कहता।

"दीदी, बहुत दर्द है,"

निदेशक की तरफ से निर्देश था कि हर दिन जब बच्चे से मिलने जाएँ तो उसके लिए उसकी पसंद का कुछ खाना और खिलौना जरूर ले जाया जाए। शुरुआत में समझ नहीं आया कि बच्चे की इससे क्या मदद होगी, लेकिन इससे बच्चे में एक बढ़ता हुआ उत्साह और खुशी दिखी।।

उसकी माँ और भाई का भी ध्यान रखते, ताकि वे खुद को संभाल सकें।

इस दौरान पुलिस ने हमें बयान के लिए बुलाया। हमने उनसे कहा।

"पार्क में खुला ट्रांसफॉर्मर क्यों लगा है? यह हादसा किसी और के साथ भी हो सकता है।"

उन्होंने हमारे साहस और सहयोग की सराहना की।

लेकिन मेरे दिल में आज भी एक सवाल है।

अगर उस दिन हम देर कर देते तो?

अगर भीड़ में से कोई भी आगे न आता तो?

वह बच्चा आज भी मेरे लिए सिर्फ एक केस नहीं है। वह इंसानियत की परीक्षा थी। उस सर्द शाम ने मुझे सिखाया।

डर सबको लगता है, पर जो डर के आगे कदम बढ़ा दे, वही सच्ची हिम्मत है।

कभी–कभी समाज भीड़ बनकर खड़ा रह जाता है,

पर इंसान वही है, जो भीड़ से अलग होकर किसी की जान बचाने के लिए आगे बढ़े।

धीरे–धीरे वह बच्चा संभलने लगा। अब वह स्कूल जा रहा है, छठी कक्षा में पढ़ रहा है। हमने उसके स्कूल से भी बात की।

"बच्चे को यह समस्या हुई है, कृपया उसकी परीक्षाएँ एक साथ लें ताकि पढ़ाई का नुकसान न हो।"

लेकिन यह कहानी सिर्फ बच्चे की नहीं है। यह कहानी है उन सामाजिक कार्यकर्ताओं की, जो रोजाना अनदेखे दर्द और मुश्किलों से जूझते हैं।

सामाजिक कार्यकर्ता बनना आसान नहीं होता। सड़क और कमजोर वर्ग में रहने वाले लोगों की पीड़ा समझना, उनके डर को महसूस करना, और उन्हें यह सिखाना कि जीवन बेहतर बनाया जा सकता है–यह आसान नहीं होता।

यह कहानी खत्म नहीं हुई– यह कहानी हमें याद दिलाती है कि छोटे कदम भी बड़ी जिंदगी बदल सकते हैं। मासूमियत, हौसला, और इंसानियत– यह सब हमारे साथ हैं, बस हमें उन्हें महसूस करना और आगे बढ़ाना है।

बारिश से बचाए बिल्स

अभिषेक मिश्रा,
असिस्टेंट अकाउंटेंट

आज भी मुझे अपने काम का एक ऐसा दिन याद है, जिसने मुझे मेरे काम की असली जिम्मेदारी का एहसास कराया।

उस समय आगरा और मथुरा में चाइल्डलाइन इंडिया फाउंडेशन का प्रोजेक्ट चल रहा था। मुझे आगरा और मथुरा से सभी खर्चों के बिल इकट्ठा करके दिल्ली स्थित हेड ऑफिस लाने की जिम्मेदारी दी गई थी। संयोग से उस दिन बरसात का मौसम था।

मैं सुबह ट्रेन से आगरा पहुँचा। जैसे ही मैं आगरा स्टेशन पर उतरा, अचानक तेज बारिश शुरू हो गई। कुछ ही देर में प्लेटफॉर्म और आसपास का इलाका पानी से भरने लगा। लेकिन मुझे उसी समय अपने प्रोजेक्ट कोऑर्डिनेटर से बिल लेने थे, क्योंकि स्टेशन पर ही चाइल्डलाइन का हेल्प डेस्क केबिन बना हुआ था।

मैं उसी छोटे से केबिन में बैठ गया। बाहर लगातार बारिश हो रही थी और लोग बारिश से बचने के लिए इधर–उधर भाग रहे थे। उसी बीच एक–एक करके टीम के सदस्य वहाँ पहुँचने लगे और अपने–अपने बिल मुझे देने लगे। मैं हर बिल को ध्यान से देख रहा था, ताकि बाद में किसी तरह की गलती न रह जाए।

बारिश लगातार तेज होती जा रही थी। मुझे आगरा से आगे मथुरा भी जाना था, लेकिन उस समय बाहर निकलना लगभग असंभव लग रहा था। इसलिए मुझे कुछ समय तक स्टेशन पर ही बारिश कम होने का इंतजार करना पड़ा।

जब बारिश थोड़ी कम हुई, तब मैंने प्रोजेक्ट कोऑर्डिनेटर से कहा कि एक प्लास्टिक का बैग ले आएँ। कागज के ये बिल बहुत महत्वपूर्ण थे। अगर ये भीग जाते, तो सारी मेहनत बेकार हो सकती थी। इसलिए मैंने

सभी बिलों को सावधानी से उस प्लास्टिक बैग में सुरक्षित रखा।

इसके बाद मैं आगरा से मथुरा के लिए बस से निकल पड़ा। रास्ते में जगह–जगह पानी भरा हुआ था और बस धीरे–धीरे आगे बढ़ रही थी। बारिश के कारण सफर कठिन हो गया था, लेकिन मेरे मन में एक ही बात थी कि किसी भी तरह सभी बिल सुरक्षित तरीके से हेड ऑफिस तक पहुँचाने हैं।

जब मैं मथुरा पहुँचा, तब तक शाम हो चुकी थी। वहाँ भी मुझे टीम के सभी सदस्यों से एक–एक करके बिल लेने थे। पूरे दिन की थकान के बावजूद मैंने धैर्य के साथ सभी से बिल इकट्ठा किए और उन्हें सुरक्षित तरीके से अपने बैग में रखा।

अब रात हो चुकी थी, लेकिन मेरी जिम्मेदारी अभी खत्म नहीं हुई थी। मुझे उसी रात दिल्ली के लिए बस पकड़नी थी, क्योंकि अगले दिन हेड ऑफिस में सभी बिल जमा करने थे। इन बिलों के आधार पर पूरे खर्च का हिसाब तैयार करके चाइल्डलाइन इंडिया फाउंडेशन को भेजना था।

देर रात मैं बस से दिल्ली के लिए निकल पड़ा। पूरे रास्ते मैं बार–बार अपने बैग को संभालकर रख रहा था, ताकि कहीं बिल गुम न हो जाएँ या भीग न जाएँ।

जब मैं दिल्ली पहुँचा, तब तक सुबह होने वाली थी। मैं थका हुआ जरूर था, लेकिन मन में एक संतोष था कि मैंने अपनी जिम्मेदारी पूरी कर ली।

उस दिन मुझे यह समझ में आया कि एक अकाउंटेंट का काम केवल ऑफिस में बैठकर हिसाब–किताब करना ही नहीं होता। कई बार उसे दूर–दूर तक यात्रा करनी पड़ती है, कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है और हर दस्तावेज को सुरक्षित रखते हुए समय पर सही जगह तक पहुँचाना पड़ता है।

मेरे लिए आगरा और मथुरा की वह बरसाती यात्रा केवल एक काम नहीं थी, बल्कि जिम्मेदारी, समर्पण और अपने कर्तव्य के प्रति निष्ठा का एक महत्वपूर्ण अनुभव थी। आज भी जब मैं अपने काम के बारे में सोचता हूँ, तो वह दिन मुझे याद दिलाता है कि सच्ची जिम्मेदारी वही है, जिसे हर परिस्थिति में निभाया जाए।

तू मुझे कोई दूसरा काम लगा दे, कचरा नहीं बीनना

सचिन प्रताप सिंह,
ट्विंक्लिंग स्टार्स, जयपुर

खुशी (परिवर्तित नाम) एक 12 वर्षीय बालिका है। मुझे जयपुर में चार दिवारी में सड़क व कामकाजी बच्चों के सर्वे के दौरान बड़ी चौपड़ नामक जगह, जो अपने क्षेत्रीय वस्तुओं के बाजार, विदेशी पर्यटकों, विरासत के रूप में बची पुरानी इमारतों के लिए प्रसिद्ध है, पर बाजार में पन्नियां, कागज के गत्ते, प्लास्टिक की बोतलें कुशलता से उठाते हुए मिली। उसके हाथ और आँखें शहर की आँखों को चुभने वाली चमक, कानों को चीर देने वाले वस्तुओं के दाम, खिलौने, कपड़ों को यूँ अनदेखा कर रहे थे जैसे कोई एक कमरे में हाथी को अनदेखा करता हो और सिर्फ जमीन पर पन्नी और सामान निकालकर फेंक दिए गए कार्टूनों के टुकड़ों को देखकर कुशलता से अपने दाएँ हाथ के कंधे पर टंगे हुए कट्टे में डालते हुए उसके हाथ किसी कुशल मशीन की तरह काम कर रहे थे।

अपने साथियों से मुस्कुराते हुए बात कर रही थी, तब मैं उसके पास गया।

तुम्हारा नाम क्या है? तुम स्कूल जाती हो? मैंने पूछा।

खुशी! उसने अपनी सहज मुस्कुराहट को समेटते हुए अनजान से बात करने की सहज रक्षात्मक प्रवृत्ति के साथ बताया। आगे बात करने पर उसने बताया कि वह बिहार से है, नहारी का नाका नामक कच्ची बस्ती में रहती है, रोज सुबह यहां माल बीनने आती है (कचरा उनके लिए माल है, जैसा कि कहा गया है किसी का कचरा किसी का सोना हो सकता है)।

वह घर से चांदपोल, चार दिवारी का प्रारंभिक दरवाजा, तक पैदल आती है व वहाँ से मेट्रो में बैठती है। जाते समय वह पैदल जाती है। कंधे का कट्टा मेट्रो के दरवाजे में नहीं आ सकता और उसे कोई कट्टा लेकर

अंदर आने भी नहीं देगा।

तुम माल क्यों बीनती हो?

मेरी मम्मी बहुत छोटी थी तब से माल बीनने लगी। उसका जवाब मानो खुद से सवाल था और खुद ही को जवाब था। अपनी मम्मी की विरासत को आगे बढ़ाते हुए उसने वही कट्टा कंधे पर रख लिया जो कभी उसकी मम्मी ने रखा था। विरासत उसके लिए कचरा बीनने का कारण है।

अगर मैं यहां पढ़ाने आऊं तो तुम पढ़ोगी?

हाँ। इस बार उसकी सहज मुस्कुराहट लौटती दिखी।

अगली बार मिलने पर वह दूर से मुझे देखकर दौड़ती हुई आई और बोली, 'तू बोला था ना पढ़ाएगा।'

अभी हम और बच्चे ढूंढ़ रहे हैं, जब ज्यादा बच्चे होंगे तब पढ़ाएंगे। मैंने कहा। इधर बहुत बच्चे हैं, तू हमारी बस्ती में चल, इधर मैं बच्चों को बोल दूंगी। पहली बार उसने नेतृत्व का एक हिस्सा उस कट्टे की जगह रखा और मुझे जगह दिखाने लगी।

कुछ दिनों तक रोज उससे मिलने व जानने पर उसने बताया, 'मैं पश्चिम बंगाल से हूं। भैया, तुझे बिहार मैंने झूठ बताया। बंगाल किसी को नहीं बताती क्योंकि बंगाल बताने से लोग हमको भगा देते हैं, बोलते हैं तुम बाहर के हो।'

उसका गाँव बंगाल के मालदा जिले में है, जहाँ से उसकी माँ कई साल पहले यहाँ आई। अपने गाँव, खेत को छोड़कर अब उसका घर उसकी याद और त्योहारों पर औपचारिक जाकर आने जितना रह गया है। इस शहर में कचरा बीनते हुए, जहाँ वह अब रहती है, वह पलायन जैसे भारी शब्द नहीं जानती। इतना जरूर जानती है, माँ इधर आ गई तो हम भी इधर काम करने लगे।

खुशी ने मेरे नंबर ले लिए और बोली, हम सब यहां 10 बजे आ जाएंगे, तू एक घंटा पढ़ा देना, फिर छुट्टी कर देना। माल बीनने में लेट हो जाते हैं ना...'और नंबर लिखे कागज को बेतरतीब ढंग से फाड़कर अपने कट्टों को रखने की जगह, शहर के अंधेरे को रोशन करने वाली स्ट्रीट लाइट के नीचे पत्थर के नीचे रख दी।

'यहां से तो नंबर खो जाएगा और कोई हटा देगा...' मैंने कहा।

'यह हमारी जगह है, इधर से कोई कुछ नहीं ले जाता।' शहर के एक कोने पर दावा करती हुई उसकी आँखें स्ट्रीट लाइट के खंभे के नीचे रखे कट्टों को देखने लगीं, मानो वह दुविधा में है कि शहर, वह कोना, या कट्टा

उसका क्या है। वह शहर के इस कोने को अपना बताती है, शहर उसके बंगाली बताने पर उसे पराया कर देता है।

खुशी ने अपने पिता को बहुत पहले खो दिया। बताती है कि मेरे पिता पागल हो गए थे और उन्होंने एक पार्क में फांसी लगा ली। हम छोटे थे। अब घर में वह, उसकी एक बहन व माँ है।

'मैं तुझे भैया नहीं, सर बोलूंगी। तू पढ़ाता है इसलिए। वह सब सोचते हैं कि तू हमें छेड़ रहा है, तू हमें कहीं ले जाएगा, ऐसा हमारे साथ के कुछ बच्चे बोलते हैं। पर तू तो बढ़िया आदमी है, पढ़ाने वाला तो अच्छा होता है।'

खुशी के अच्छे–बुरे का फर्क बहुत छोटा और आसान है। खुशी उम्र की उस अवस्था में है जहाँ शहर, चौराहे व भीड़ उसके लिए एक खतरे के सिवा कुछ और अर्थ नहीं रखते।

'मैं किसी से मतलब नहीं रखती। माल बीनती हूं। मम्मी के खाना लेकर आने का इंतजार करती हूं, फिर मम्मी के साथ रहती हूं।' कोई कुछ बोलेगा या छेड़ेगा तो चप्पल मारूंगी। उसे अपनी चप्पल, गाली और आत्मविश्वास पर किसी पुलिस, सरकारी तंत्र से ज्यादा भरोसा है।

'वह मेट्रो के कॉम्प्लेक्स वाले अंकल अच्छे हैं, हमें प्यार से बात करते हैं, खाने को देते हैं,' खुशी बताती है। उसी समय उसने आँख से पार्किंग की तरफ इशारा करते हुए बताया कि वो स्कूटी पर पार्किंग वाला लड़का उन्हें रोज घूरता है। यह दर्शाता है कि उसे कचरे की पहचान अच्छे से है।

यहीं उसके लिए रक्षात्मक प्रणाली है। उसने कभी बाल सहायता नंबर के बारे में नहीं सुना। सरकार की सारी योजनाएं, कानून, नीतियाँ उसके लिए बहुत भारी हैं।

'हम पढ़ाई के साथ–साथ कभी–कभी घूमने भी चलेंगे,' मैंने कहा।

'हवा महल?' उसने पूछा और बोली, 'सर, मैं हवा महल कभी नहीं गई। उसके बाहर कचरा भी नहीं बीनने देते। तू लेके चलना।'

'जरूर!' मैंने कहा।

खुशी के साथ कई दिन बिताने पर एहसास हुआ कि हमारे शहर कितने अमानवीय, खोखले और बेचौन करने वाले हैं। शहरों को कितना बाल हितैषी होना चाहिए, यह सरकार व समाज का विषय है। बच्चे जरूर शहर हितैषी बन चुके हैं, यह उनके साथ रहकर पता चलता है।

खुशी ट्रैफिक के नियमों को तोड़ती गाड़ियों के बीच से अपने साथियों के साथ कचरा बीनने निकलती है। गाड़ियों को हाथ से रुकने व धीमे

करने का इशारा करती हुई, भीड़ के घूरने को अनदेखा करती, कचरे की तलाश में दाईं तरफ से निकलती है और बाईं तरफ से लौटकर सारा शहर का कचरा जो उसके काम का है ले आती है। कचरे की ही तरह पानी और बाथरूम के लिए भी वह शहर पर निर्भर है। मेट्रो के बाथरूम की बदबू उसके लिए कोई परेशानी भरी नहीं है। पानी वह बोतल से मंदिर के नल से भर लाती है।

पढ़ने के लिए अपने कट्टों को बिछाकर, पुरानी और हाथ खड़े कर चुकी पैर की चप्पलों को लाइन से जमाकर पढ़ने बैठती है। खुशी को नाम लिखना सिखाने के लिए नाम लिखकर बगल वाले पेज पर एक गोले में कई अक्षरों के साथ उसके नाम के अक्षर भी लिख दिए गए। उस दिन उसने कचरे के अलावा अपने नाम के अक्षर भी बीने और अक्षर बीनकर अपने हाथ पर लिख लिए।

'हाथ पर नहीं लिखते,' मैंने कहा। तो बोली, 'लिखने दे ना, मुझे याद रहेगा मेरा नाम।'

कलर देने पर वह एक सफेद पतले कागज पर लड़की का चित्र बनाती है। चित्र की लड़की की खुशी थोड़ी अजीब व सौंदर्यपरक नहीं थी। क्या वह उसका चित्र है? पूछने पर वह हंसने लग गई। उसमें और चित्र में एक बुनियादी फर्क है। चित्र की लड़की के कंधे पर कचरा बीनने वाला कट्टा नहीं है। चित्र की लड़की के माथे पर बिंदी बनाकर कहती है, उसे बिंदी बहुत पसंद है। उसकी बस्ती की सभी लड़कियां बिंदी लगाती हैं। वह अपने माल बीनने वाले कट्टों का बहुत ध्यान रखती है। एक कुत्ता, जिसका नाम उसने शेरा रखा है, उसके कट्टों पर बैठता है और उनका रक्षक है।

सरकार अपनी विरासती इमारतों को संरक्षित करती है, खुशीका शेरा उसके कचरा बीनने वाले विरासती कट्टे को।

'कल तुमने जो काम डाला, वो मैं नहीं कर पाई,' वह बोली।

क्यों?

पूछने पर बताया कि कल वह घर 1 बजे रात को गई, क्योंकि कल माल छंटनी करनी पड़ी। खुशीकी यही दिनचर्या है–सुबह दाईं तरफ घर से पैदल कट्टा लेकर चलना, बाजार के शोर के बीच कचरा बीनना, रात को लौट जाना। समय का अंदाजा वह अजान की आवाज से लगाती है।

'कभी–कभी मुझे कुछ काम की चीजें भी माल बीनते समय मिल जाती हैं, जिसे हम रख लेते हैं।' साझा करने की प्रवृत्ति उनमें मौजूद है।

एक बार किसी ने उसे कुछ चॉकलेट्स दीं तो उसने एक मुझे दे दी। बोली, 'हमें रोज कुछ–कुछ खाने को कोई दे देता है।'

कई दिनों तक रोज पढ़ाने के बाद एक दिन अचानक खुशी ने कहा, 'सर, कल मैं और मेरी बहन घर के पास वाली स्कूल गए थे। वहाँ कोई प्रोग्राम था। हमने उधर कागज से काटकर खरगोश भी बनाया, नाश्ता भी किया, चित्र भी बनाए।'

इतना कहकर वह रुक गई, मानो उसे कुछ कहना हो और खुद से लड़कर कहने जा रही हो।

'तू मुझे कोई दूसरा काम लगा दे, कचरा नहीं बीनना।' सड़क पर उसे अपने समझदारी के सालों में पहली बार माल बीनने के काम के अलावा श्कुछ औरश के बारे में उसने सोचा।

'कुछ दिनों बाद हम तुम्हें पढ़ाकर स्कूल भेजेंगे,' मैंने कहा।

'स्कूल नहीं जा पाऊंगी। किराया 4 हजार लेता है हमारा। काम नहीं करूंगी तो मम्मी मारेगी।' यह कहकर वह 'कुछ औरश को छोड़कर उसी कट्टे को उठाकर माल छांटने लगी।

एक दिन उसने कहा, 'तू हमारे घर कब आएगा?' मेरे बोलने से पहले ही उसने खुद कह दिया, 'ईद पर आना, मैं तेरे लिए सेवइयां बनाऊंगी।'

खुशी सुबह घर से चाय पीकर आती है। उसके लिए चाय ही नाश्ता है और दिन में कभी कुछ किसी के दे देने पर खा लेती है। उसकी माँ दिन में 2 बजे खाना लाती है, तब सब मिलकर शहर के बीच अपने कट्टों का सहारा लेकर खाना खाते हैं।

खुशी के पढ़ने की चाहत अभी उस बालक की तरह है जो कटोरे के पानी में चाँद देखता है और हाथ से पकड़ने के क्रम में जल तरंग बनाकर चांद के कई रूप बना देता है। पर कुछ दिनों की पढ़ाई, बातचीत और विश्वास उसे स्कूल में कागज से खरगोश बनाने तक और कचरे के सिवा ज्कुछ और' तक ले गया। उम्मीद है आगे उसका 'कुछ और' स्कूल के शोर तक उसे ले जाए और वह अपनी कॉपी में पतले कागज पर एक लड़की बनाए, जिसके माथे पर बिंदी हो और कंधे पर स्कूल का थैला।

मेरी उड़ान-संघर्ष से सपनों तक

ज्योति,
नोएडा

मैं दिल्ली के निजामुद्दीन रेलवे स्टेशन के फ्लाईओवर के नीचे रहती थी। मेरे पास न कोई घर था, न स्कूल जाने का मौका। पेट भरने के लिए मुझे कबाड़ा बीनना पड़ता था और कभी–कभी भीख भी मांगनी पड़ती थी।

दिन कठिन थे और रातें उससे भी ज्यादा कठिन। आस–पास के माहौल में रहकर धीरे–धीरे मुझे नशे की लत भी लग गई। घर की हालत इतनी खराब थी कि मुझे समझ ही नहीं आता था कि जिंदगी में आगे क्या होगा। लेकिन मेरे मन में कहीं न कहीं पढ़ने का एक छोटा–सा सपना हमेशा जिंदा था।

एक दिन मेरी जिंदगी में एक नया मोड़ आया। मुझे चेतना संस्था के दीदी–भैया मिले। उन्होंने मुझे अपने सेंटर से जोड़ा और मुझे उसे पढ़ना–लिखना सिखाना शुरू किया। मैं कभी स्कूल नहीं गई थी, लेकिन पढ़ने की मेरी लगन बहुत मजबूत थी।

धीरे–धीरे मैं मैंने पढ़ाई शुरू की और NIOS के माध्यम से तीसरी कक्षा से लेकर बारहवीं कक्षा तक की पढ़ाई पूरी की। पढ़ाई के साथ–साथ मैं अपने सेंटर की लीडर भी बन गई। सिर्फ अपने लिए नहीं, बल्कि अपने साथ पढ़ने वाले सभी बच्चों का भी ख्याल रखती थी।

मेरी मेहनत और जिम्मेदारी देखकर मुझे बढ़ते कदम जो कि सड़क से जुड़े बच्चों का संगठन है उसमें जिला सचिव बनाया गया और आगे चलकर मैं राष्ट्रीय सचिव भी बनी। इसी के साथ मैं बालकनामा जो कि सड़क से जुड़े बच्चों का अखबार है, उसमें पहले बातूनी रिपोर्टर बनी और बाद में सलाहकार की भूमिका भी निभाने लगी।

सेंटर पर मैं बच्चों के साथ मीटिंग करती, एडिटोरियल मीटिंग आयोजित करती और बच्चों को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती। बच्चों की मदद से कई खबरें खोजकर लाती, जो बाद में बच्चों के अखबार

बालकनामा में छपती थीं। यह देखकर मुझे बहुत खुशी होती थी कि बच्चों की आवाज समाज तक पहुंच रही है।

समय के साथ मैं सिर्फ पढ़ने वाली लड़की नहीं रही, बल्कि बच्चों की आवाज बनने लगी। मैने कई बच्चों को शेल्टर होम तक पहुंचाया और कई बच्चों को गलत परिस्थितियों से बचाया। कुछ मामलों में तो बच्चों के साथ उनके अपने ही लोग गलत कर रहे थे। जब मुझ को यह पता चला, तो मैने हिम्मत दिखाई और बच्चों को न्याय दिलाने के लिए कदम उठाया। न्याय के लिए मुझे पाँच साल तक अदालत के चक्कर भी काटने पड़े। इस दौरान कई मुश्किलें आईं, लेकिन चेतना के कार्यकर्ता हमेशा मेरे साथ खड़े रहे और मुझे हिम्मत देते रहे।

मेरी मेहनत और लगन को देखकर मुझे नोएडा में चल रहे चेतना के कार्यक्रम का हिस्सा बनाया गया। आज मैं वहां बच्चों को पढ़ाने और उन्हें कार्यक्रम से जोड़ने का काम संभाल रही हूं।

इस कार्यक्रम में 7 से 17 साल के उन बच्चों को जोड़ा जाता है जो सड़क पर रहते हैं या काम करते हैं। अगर किसी बच्चे को अपने छोटे भाई–बहनों की वजह से पढ़ने में दिक्कत होती है, तो उन्हें भी कार्यक्रम से जोड़ा जाता है ताकि कोई बच्चा शिक्षा से वंचित न रहे।

मैं बच्चों को अलग–अलग गतिविधियों के माध्यम से पढ़ाती हूं। हम बच्चों को बुनियादी शिक्षा देते है और फिर उनका दाखिला पास के सरकारी स्कूलों में करवाते है। इसके बाद स्कूल जाकर बच्चों की पढ़ाई का फॉलो–अप भी लेते है। अगर कोई बच्चा स्कूल नहीं आ रहा होता, तो मैं उसके घर जाकर माता–पिता को समझाती हुं कि शिक्षा कितनी जरूरी है।

मेरी मेहनत का नतीजा यह रहा कि इस साल मैंने 90 बच्चों का स्कूलों में दाखिला करवाया। यह मेरे लिए बहुत गर्व और खुशी की बात है। चेतना के साथ काम करते हुए मैंने बहुत कुछ सीखा। जब मैं बच्चों को नशा करते, भीख मांगते या कबाड़ा बीनते देखती हूं, तो मुझे गुस्सा नहीं आता। बल्कि मुझे अपना बचपन याद आ जाता है, क्योंकि मैं भी कभी उसी रास्ते से गुजरी थी। चेतना की वजह से मुझे नेपाल जाने का मौका मिला। मैंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि मैं एक दिन हवाई जहाज में बैठूंगी, लेकिन चेतना ने मेरा यह सपना भी सच कर दिया।

आज मेरा एक ही सपना है

मैं आगे बढ़ती रहूं और अपने जैसे बच्चों को भी आगे बढ़ने का मौका दूं। जब मैं किसी बच्चे को पढ़ते, मुस्कुराते और अपने सपनों की ओर बढ़ते देखती है, तो मुझे लगता है कि मेरा संघर्ष सफल हो गया।

CHETNA

Childhood Enhancement through Training and Action

40/22, Manohar Kunj, Ground Floor, Gautam Nagar, New Delhi-110049

Tel.: 011-41644470, 011-41644471, E-mail: chetnacncp@gmail.com,

info@chetnango.org, website www.chetnango.org

CHETNA DIARY
CHETNA
Thandi Coffee ka Garam Swad
E-Rikshaw ka Safar
Darwaze ke Us Paar
Phone se Nikli Didi
Asamajik Tatvon se Chhudaya Peecha
Sangharshon se Bani Pehchaan
Madam Hum Padhe-Likhe Nahi Hain
Naukri Nahi, Committment Chahiye
Hisaab ki Kitaab
Police Uncle ko Bata Doongi Sach
Aankdon ke Peeche Chhupe Sangharsh
Kacchi Kalam se Badhte Kadam
Agar Kuch Gadbad Ho Gaya To?
Rishton se Banta Hai Raasta
Sadak se Sanstha Tak – Accounts Admin ka Safar
Band Ghar ki Khuli Khidki
Raj Bahadur ko Mili Nai Raah
Vishwas ka Beej
Mile Sur Mera Tumhara
Jahan Zarurat, Wahan Parshuram
Asal Mulyankan
Ladke Nahi Rote
Kaam Bhi, Parivaar Bhi
Maine Jiya Chetna ka Safar
Bholi Devi ki Kahani
Vishwas ki Neev
Do Dost, Ek Sapna
Jab Dar Bana Seekh
Sapnon ki Yatra
Sardi ki Veh Bhayanak Shaam
Baarish se Bachaye Bills
Tu Mujhe Koi Dusra Kaam Laga De, Kachra Nahi Beenna
Meri Udaan – Sangharsh se Sapnon Tak